भट्ट निबंधावली

(दूसरा भाग)

सम्पादक

श्री धनंजय भट्ट 'सरल'

१९९९
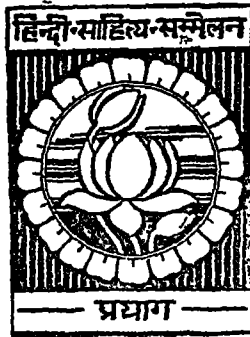
हिन्दी साहित्य-सम्मेलन,

प्रकाशक का वक्तव्य

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी। उस सहायता से सम्मेलन ने सुलभ-साहित्य माला के अंतर्गत कई सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अन्य हिन्दी प्रेमी श्रीमानों के लिए स्वर्गीय बड़ौदा-नरेश का यह कार्य अनुकरणीय है।

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट का हमारे गद्य निर्माताओं में एक विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं के कुछ चुने हुए साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। इसका पहला भाग भी सम्मेलन से प्रकाशित हो चुका है। आशा है, हिन्दी प्रेमी सज्जन तथा विद्यार्थीगण इससे लाभ उठायेंगे।

साहित्य मंत्री

प्रथम बार :: १००० :: मूल्य १)
मुद्रक—पंडित मगनकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, प्रयाग

वक्तव्य

भारतेन्दु-युग आधुनिक हिन्दी का बाल्य-काल था। इस काल मे अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण 'प्रेमघन', राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, तोताराम, काशीनाथ खत्री, कार्तिक प्रसाद खत्री, श्री निवास-दास आदि अनेक गद्य लेखक पाए जाते हैं, पर यदि इनमे निबन्ध-लेखकों को चुना जाय तो केवल दो ही व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं— बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र। इनमे प० बालकृष्ण भट्ट का कार्य पं० प्रताप नारायण मिश्र से कहीं अधिक महत्व का है क्योंकि वे हिन्दी-गद्य को अत्यधिक शुद्ध तथा परिमर्जित करके उसे साहित्य के उपयुक्त बनाने मे सर्वथा सफल हुए। पं० प्रताप नारायण मिश्र के द्वारा हिन्दी-गद्य में जो कुछ शिथिलता आ गई थी उसका प्रतिकार भट्ट जी ने किया। मिश्र जी की भाषा मे विशेष कर व्यंग्य और हास्य लिखने मे ग्रामीणता की झलक आ जाया करती थी, उसी भाषा ने प० बालकृष्ण भट्ट के द्वारा सुन्दर, समीचीन, साहित्यिक रूप धारण किया। पं० प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी-गद्य का जो उपवन लगाया था भट्ट जी ने चतुर माली की भाँति उसके विटपों की अनावश्यक सघनता की काट-छाँट की और नए-नए सुन्दर पौधों को अकुरित, पल्लवित और पुष्पित करके उसमे सरस साहित्यिक सौरभ का सचार किया।

उस समय अंग्रेजी का प्राबल्य, हिन्दी-शब्दकोष का दौर्बल्य और उर्दू भाषा का सर्वत्र प्रवेश देखकर हिन्दी भाषा को व्यापक बनाने की चिन्ता से भट्ट जी ने हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा का जिसे खड़ी बोली कहते हैं प्रचार करना शुरू किया। उसमें चलतापन, विविध भाव प्रकाशिनी क्षमता, और स्वच्छन्दता पैदा करने के लिए पर्याप्त परिश्रम किया। उस समय तक हिन्दी में पण्डिताऊपन, व्रज या पूर्वीय भाषा

का पुट और सानुप्रासिक शैली चली आ रही थी। इन सब को इन्होंने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के सहयोगी और सहचारी बन कर दूर किया और हिन्दी को शुद्ध और स्वच्छन्द बना कर इस गद्य शैली को सर्वव्यापक और सर्वमान्य बना दिया। हिन्दी-गद्य मे साहित्य का अलौकिक गुण भारतेन्दु जी के बाद इन्हीं के प्रभाव से पूर्ण रूप में आया है।

हिन्दी-गद्य के शब्द-भंडार को समृद्ध बनाने मे भी इन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न किया। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और शुद्ध हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी होते हुए भी वे परम्परागत प्रचलित शब्दों के व्यवहार मे ही नहीं अटके और न संस्कृत शब्दो की भरमार से भाषा को क्लिष्ट बनाने मे ही अपनी शक्ति नष्ट की। उनका कहना था कि यदि किसी भाव को उत्तमता के साथ प्रकट करने के लिए अपनी भाषा मे ठीक-ठीक शब्द न मिलें और विदेशी भाषा मे वैसा उपयुक्त शब्द मिलता हो तो उसके व्यवहार करने मे दोष न समझना चाहिये। इसी सिद्धान्त के अनुसार उर्दू तो क्या वे प्रायः फारसी अरबी या अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयोग किया करते थे। जब कभी उन्हे किसी भाव को व्यक्त करना अभीष्ट होता और हिन्दी मे अंग्रेजी का पर्याय-वाची शब्द न मिलता और उसको पूर्णरीति से स्पष्ट करने में अंग्रेजी शब्द ही समर्थ मालूम होता तो वे निस्संकोच उन्हें भी ब्रैकट के अन्दर लिख देते थे। इसी प्रकार वह कभी कभी निबन्धों के शीर्षक भी हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी दिया करते थे जैसे—"Are the nations and individual two different things ?" "Peace is sought by war" इत्यादि।

वह नए नए शब्द और मुहावरों को गढ़ने मे भी बड़े सिद्धहस्त थे। किसी आशय को प्रकट करने के लिए जब उन्हें ठीक-ठीक शब्द नहीं मिलते थे तो वे तुरन्त नए नए शब्द और मुहावरे बना लेते थे। इनके निबन्धों में स्थान स्थान पर सुन्दर मुहावरों की

लड़ी सी गुथी रहने के कारण उसमे एक प्रकार का सम्मेलन उत्पन्न हो जाता और भाषा में रोचकता, कान्ति, ओज और आकर्षण आ जाता था।

भट्ट जी की "हिन्दी उनकी अपनी हिन्दी थी" और उस पर उनकी छाप लगी रहती थी। उनकी भाषा की व्यङ्गमयी छटा उन्हीं की अपनी प्रवृत्ति और सम्पत्ति थी। उनके निबन्ध भी हमेशा नए से नए उन्हीं के विचारों की उपज रहा करते थे। उनके प्रत्येक निबन्धों मे गम्भीर अध्ययन, अनुभव, और पाण्डित्य का परिचय पग पग पर मिलता था। परन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है उनकी विद्वत्ता कभी भाषा की सुबोधता या सरलता मे बाधक नहीं हो पाती थी। वह हमेशा ऐसी भाषा में लिखते थे जिससे पढ़ने वालों की रुचि उसकी ओर बढ़े और उसमे व्यक्त किए हुए भाव उसके हृदय मे तत्काल ही प्रवेश कर अंकित हो जावे। इसीलिये उनकी सभी प्रकार की रचनाओं मे मनोरंजकता का पूर्ण समावेश रहता था और उनके गम्भीर से गम्भीर विषयो पर लिखे गए निबन्ध भी हास्य से रिक्त नहीं होते थे।

हिन्दी मे भट्ट जी ने ही भावात्मक निबन्धों का सृजन किया और उसका विस्तार और प्रचार भी किया। इसी प्रकार विचारात्मक निबन्धों का प्रणयन भी इन्होंने ही किया है। इस प्रकार के इनके निवन्धों मे विचारों की सुश्रृंखल योजना, उनका क्रम-बद्ध उद्घाटन और यथातथ्य विवेचन का पूरा समावेश रहता था। पद्यात्मक प्रणाली में गद्य लिखना आज कल साधारण बात हो गई है। भट्ट जी ने उस समय इस प्रकार के पद्यात्मक गद्यों की भी प्रभाव पूर्ण रचना की थी। आधुनिक अंग्रेजी पढ़े हुए लेखकों के लेखों मे जो कोष्ठवन्दी होती है उसका आविर्भाव भी हिन्दी मे पहले पहल इन्होंने ही किया था। इन्हीं सब गुणों से साहित्यिकों ने इन्हें "आविष्कारक गद्यलेखक" कहा है और इनकी तुलना अंग्रेजी साहित्य के "एडीसन" और "स्टील" से की है। वहुत से विद्वानों ने इनके निबंधों का मुकाबला अंग्रेजी के

लेखक चार्ल्स लैम्ब (Charles Lamb) के उत्तमोत्तम निबन्धों के साथ किया है और लिखा है कि "भट्ट जी की भाषा में वही सुबोधता है, वही स्वाभाविकता तथा वही सरसता है जो लैम्ब मे मिलती हैं। जिस प्रकार लैम्ब "All Fools Day", "Poor relations" आदि लेखों मे छोटी सी बातों को लेकर बड़ी लम्बी काल्पनिक उड़ान लेते हैं उसी प्रकार भट्ट जी भी अपने लेखों में बहुत ऊँचे पहुँच जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके निबन्धों में वही घनिष्टता तथा व्यक्तित्व है जो लैम्ब मे है।"

इनके कुछ श्रेष्ठ निबन्धों का संग्रह "साहित्य सुमन" नाम से प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक अपनी साहित्य श्रेष्ठता के कारण शुरू ही से प्रयाग विश्व-विद्यालय की एम० ए० और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक रहती चली आ रही है। यह अन्यान्य और भी जितने अधिक स्थानों में पाठ्य-पुस्तक बनाई गई और जितने अधिक संस्करण इसके हुए उतनी लोक-प्रियता आधुनिक काल के शायद ही किसी संग्रह को प्राप्त हुए हों। इनके चुने हुए सुन्दर भावात्मक निबन्धों का सग्रह "भट्ट निबन्धावली" के प्रथम भाग के रूम मे इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। इस दूसरे भाग में इनके विचारात्मक निबंधो का सग्रह किया गया है। इस संग्रह मे चुने हुए इनके ३५ निबंध उच्चकोटि के रखे गये हैं। ये सभी निबन्ध "हिन्दी-प्रदीप" से लिए गए हैं और प्रत्येक निबन्ध के नीचे उनकी रचना का समय भी दे दिया गया है। आशा है, हिन्दी-संसार इन नूतन संग्रह-ग्रन्थों का यथेष्ट आदर करेगा।

अहियापुर, इलाहाबाद
ता० १२ नवम्बर; १९४२

धनंजय भट्ट 'सरल'

निबन्ध सूची

संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या

१—ज्ञान और भक्ति

ज्ञान और भक्ति दोनों परस्पर प्रतिकूल अर्थ के द्योतक मालूम होते हैं; ज्ञान के अर्थ हैं जानना या जानकारी और ज्ञ धातु से बना है। भक्ति भज धातु से बनी है जिसके अर्थ हैं सेवा करना या लगाना (टू सर्व आर टू डिवोट)। मनुष्य में जानकारी स्वच्छन्द या सर्वोपरि रहने के लिये प्रेरणा करती है, जो अज्ञ या अबोधोपहत हैं वे ही दूसरे के आधीन या मातहत रहना पसन्द करते हैं। एक या दो मनुष्यों की कौन कहे समस्त जाति की जाति या देश का देश के साथ यह पूर्वोक्त सूत्र लगाया जा सकता है। अमरिका में ईस्ट इंडियन्स और आफ्रिका के काफिर अथवा काले-कुरूप हब्शी क्यों गुलाम बना लिये गये और यूरोप की सभ्य जाति ने सहज में उन्हें जीत अपने वशम्वद तथा आधीन बना लिया? इस लिये कि इन हब्शियों में तथा ईस्टइण्डियन्स में ज्ञान तथा बुद्धि-तत्व की कमी थी जो सर्वथा अज्ञ और अबोधोपहत होते हैं। ज्ञान आध्यात्मिक उन्नति (स्पिरिचुअल प्रोग्रेस) का मुख्य द्वार है। नेशन में "नेशनालिटी" जातीयता और आध्यात्मिक उन्नति (स्पिरिचुआलिटी) दोनों साथ-साथ चलती हैं अर्थात् कोई क़ौम जब तक अपनी पूरी तरक्की पर रहती है तब तक रूहानी तरक्की का घाटा या अभाव उसमें नहीं पाया जाता।

भारत में वैदिक समय आध्यात्मिक उन्नति का मानों एक उदाहरण था, ज्यों-ज्यों उसमें अन्तर पड़ता गया भारत आरत दशा में आय बराबर नीचे को गिरता गया। उपरान्त पुराणों की सृष्टि ने लोगों में बुद्धि का पैनापन न देख भक्ति को उठाय खड़ी किया इसलिये कि लोग ब्रह्मचर्य के ह्रास से बुद्धि की तीक्ष्णता खो बैठे थे उतने कुशाग्र-बुद्धि के न रहे कि आध्यात्मिक बातों को भली-भांति समझ सकें। भक्ति ऐसी

रसीली और हृदय ग्राहिणी हुई कि इसका सहारा पाय लोग रूखे ज्ञान को अवज्ञा और अनादर की दृष्टि से देखने लगे और साथ ही साथ नेशनालिटी जातीयता को भी विदाई देने लगे—जिसके रफूचक्कर हो जाने से भारतीय प्रजा मे इतनी कमजोरी आ गई कि पश्चिम के देशों से यवन तथा तुरुष्क और मुसलमानों को यहाँ आने का साहस हुआ।

इसी बीच स्वामी शंकराचार्य जन्म ग्रहण कर उसी रूखे ज्ञान को पुनः पुष्ट करने लगे—"ससार सब मिथ्या स्वप्न सदृश है; हमी ब्रह्म हैं; पाप-पुण्य-स्वर्ग-नर्क दोनो एक और बन्धन के हेतु हैं" इत्यादि इत्यादि न जानिये क्या-क्या खुराफात प्रीच करने लगे। यहाँ तक कि प्रच्छन्न बौद्ध इन आधुनिक वेदान्तियो के अद्वैतवाद से महर्षि कृष्ण द्वैपायन के वेदान्त दर्शन मे बड़ा अन्तर पड़ गया। प्रेम, सहानुभूति, प्राणरण के साथ स्वदेश-गौरव का ममत्व, आदि जो जातीयता के बढाने के प्रधान अग हैं सबों पर पानी फिर गया: आध्यात्मिक उन्नति जिसका ज्ञान एक अग है उसमे शंकर के अद्वैतवाद का कुछ भी असर न पहुँचा। बौद्धों को पराजित कर हिन्दुस्तान से निकाल देने ही के लिये शकर महराज की विशेष चेष्टा रही इस लिये सायन, माधव, वाचस्पति आदि इनके अनुयायी तथा कुमारिल और गौड़पाद प्रभृति महा पण्डित जो शकर के समकालीन थे इन सबों की चेष्टा भी केवल वाद के ग्रन्थ निर्माण पर विशेष हुई। आर्ष-प्रणाली छहो शास्त्र की सर्वथा भुला दी गई केवल वाद मात्र रहा; आध्यात्मिक विषयक वास्तविक 'प्रेक्टिकल' कुछ न रहा। हम पहले सिद्ध कर चुके हैं आध्यात्मिक उन्नति (स्प्रिचुअल प्रोग्रेस) और जातीयता नेशनैलिटी या पॉलिटिकल मुल्की जोश साथ साथ चलते हैं।

हमारे यहाँ जिस समय महम्मद गोरी आदि अत्याचारी मुसलमान विजेता सब ओर से देश को आक्रमण किये डालते थे उस समय सस्कृत मे प्रत्येक विषय के कैसे-कैसे आकर ग्रन्थ निर्माण किये गये पर उनमें पॉलिटिक्स की कहीं गन्धि नहीं पाई जाती। यही चाल अब तक सस्कृत

के पुराने पण्डितों मे कायम है। लड़ना-भिड़ना केवल अबोधोपहत राजपूत बेचारे और विषय-लम्पट कतिपय राजाओं ही मे रह गया। देश के विद्वानों मे इसका कुछ भी असर न पड़ा। अन्त को यह कहावत ही चल पड़ी ' कोई नृप होहिं हमे का हानी। चेरी छोड़ न होउब रानी" और अब तो इस अंग्रेज़ी राज मे दक्षिणा-लम्पट इन कोरे पण्डितो का कुछ अद्भुत हाल हो गया कि जिससे कुछ संशोधन या देश का उद्धार है उसमे जहाँ तक वश चलता है अड़चन डालने को मुस्तैद रहते हैं। क्षत्रियों मे जब जोश बाकी न रहा तो इन पण्डित और ब्राह्मण बेचारो की कौन बात रही? तालीम की धारा मे सभ्यता के सामने ब्राह्मणों की चतुराई का खुलासा इनके वर्त्तमान बिगड़े हुये हिन्दू धर्म को पूछता कौन है?

अस्तु, इसी समय स्वामी रामानुज तथा मध्वाचार्य जन्म लै सेव्य-सेवक भाव की बुनियाद डाल अहं ब्रह्मास्मि के प्रचार को बहुत कुछ ढीला किया पर दासोस्मि दासोस्मि कह इतना दास्य भाव और गुलामी को लोगो की नस-नस मे भर दिया कि जिससे ब्रह्मास्मि ही बल्कि अच्छा था कि लोगों मे स्वच्छन्द रहने की उत्तेजना तो पाई जाती थी। भक्ति का रसीला शुद्ध-स्वरूप वल्लभाचार्य विशेष-कर कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने दिखाया। प्रेम, सहानुभूति, ऐक्य आदि अनेक बाते जो हमारे मे "नेशनालिटी" कायम रखने के मुख्य अंग हैं उनकी जड जहाँ तक बन पड़ा पुष्ट किया पर ये लोग ऐसे समय मे हुये जब देश का देश म्लेच्छा-क्रान्त हो रहा था और मुसलमानो के अत्याचार से नाकों में प्राण आ लगे थे। इससे आध्यात्मिकता पर इन्होंने बिल्कुल ज़ोर न दिया बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि ऋषि प्रणीत प्रणाली को हाल के इन आचार्यों ने सब भाँत तहस-नहस कर डाला। भक्ति-मार्ग की उन्नति की गई किन्तु हमारी आध्यात्मिक अवनति के सुधार पर किसी की दृष्टि न गई। शुद्ध स्फटिक-सी भक्ति की जो विमल-मूर्ति थी उसमें मे कज्जल सी कालिमा का सञ्चार होने लगा। मूर्खता संक्रामित हिन्दू जाति के लिये

यह भक्ति वानर के हाथ मे मणि के सदृश हुई। अब इस भक्ति में दंभ जितना समा गया उतना चित्त की सरलता, अकौटिल्य और सचाई नही पाई जाती। भक्ति मार्ग के स्थापित करने वाले महाप्रभुओं के समकालीन भक्त जनों में सच्ची भक्ति का पूर्ण उद्गार था; उन महात्माओं का कितना विमल चित्त था; अकुटिल भाव के रूप थे: यही कारण है कि उन्हे भगवान् का साक्षात्कार हुआ। मीराबाई, सूरदास, कुंभनदास, सनातन गोस्वामी आदि कितने महा पुरुष ऐसे हो गये जिन के वनाये भजन और पदो मे कैसा असर है जिसे सुन चित्त आर्द्र हो जाता है। मुल्की जोश की कोई वात तो इन लोगों मे भी न थी उसकी जड़ ही न जानिये कव से हिन्दू जाति के बीच से उखड़ गई पर परमार्थ साधन और आर्जव के तो वे सव लोग स्तम्भ-सदृश हो गये।

अब ऐसे लोग इस भक्ति मार्ग मे क्यो नहीं होते यही एक पक्का सबूत है कि अब इसमें भी केवल ऊपरी ढोंग-मात्र रह गया। वास्तविक कोई वात न बच रही जिससे हमारे हिन्दू धर्म के विरोधियो को यह कहने का मौक़ा अलबत्ता मिला कि यहाँ आध्यात्मिकता कुछ नही है। दुनिया भर को अध्यात्म का रास्ता दिखानेवाला भारत आध्यात्मिक विषय से शून्य है। ऐसा कहने और मानने वालो की कुण्ठित-बुद्धि को हम कहाँ तक पछतायँ? तवारीख़ो से साबित है कि ईसा और महम्मद आदि यहाँ का कण-मात्र पाय सिद्ध हो गये। वही भारत के सन्तानो को समय के बलाबल से यह सब सुनना पड़ता है; सात समुद्र के पार से आय विदेशी लोग अब हमें ज्ञान देने और सभ्यता सिखाने का दावा बाँध रहे हैं लाचारी है।

मार्च; १९०२

२–बोध, मनोयोग और युक्ति

किसी वस्तु के देखने सुनने छूने चखने व सूँघने से जो एक प्रकार का ज्ञान होता है उसे बोध (फीलिंग आर सेन्सेशन' कहते हैं, परन्तु यथार्थ मे केवल बोध से ज्ञान नही होता, प्रकृत-ज्ञान (परसेप्सन) बोध और साधारण ज्ञान दोनों मिल के होता है और वह प्रकृत-ज्ञान बोध तुम्हे कितना ही हो विना मनो योग के नही होता, अतएव केवल बोध मे मन अस्थिर रहता है और ज्ञान जो मनो योग के द्वारा होता है उसमे स्थिर रहता है। जैसे घड़ी जो आठो पहर बजा करती है उसे कभी हम सुनते हे कभी नही सुनते, पास धरी हुई घड़ी का शब्द सुनने का कारण वही अमनोयोग है जिसके बजने का बोध तो सबी अवस्था से हुआ करता है पर उसके शब्द का ज्ञान अर्थात् घड़ी मे कै बजा इसका ज्ञान हमे तभी होता है जब हम दत्तावधान हो मन का सयोग उसके बजने मे करते हैं।

यह थोड़ा सा वर्णन दार्शनिक बोध का यहाँ किया गया; अब लोक मे बोध और प्रकृत-ज्ञान (परसेप्शन) किस प्रकार होता है और क्या उसका परिमाण है सो देखाते हैं। पहिले हमने देखा कि यह बालक बड़ा सुन्दर और हँसमुख है। देखते ही उसकी प्रशंसा करने लगे चाहे यह प्रशसा मन ही मन हो या प्रगट मे हो। प्रशसा करते करते उस बालक पर स्नेह का भाव उत्पन्न हुआ तो यहाँ बालक को पहले देखने को हम बोध (सेनेसेशन) कहेंगे और उस पर जो स्नेह का होना सो मानों प्रकृत-ज्ञान (परसेप्सन) कहलाया। सौन्दर्य प्रेम का प्रधान कारण ठहरा परन्तु उस प्रेम मे यदि किसी कारण भय आदि का ससर्ग न आ गया हो तो। सिंह मनोहर जन्तु है सही

पर फाड़ने वाले सिंह पर कौन प्रेम करेगा? बोध मनुष्य-मात्र में होता है परन्तु युक्ति-सिद्ध बोध उपकारी है और युक्ति-विरुद्ध बोध सिवा अपकारी होने के अतिरिक्त उपकारी हो ही नहीं सकता। अभिलाषिता पाणिगृहीती युवती पर प्रेम अनिष्टकारी नहीं है क्योंकि दाम्पत्य-प्रेम भावी सुख का प्रधान कारण है। किसी अन्य स्त्री पर प्रेम करना अनिष्टकारी है इसलिये युक्ति-विरुद्ध कहलावेगा। सदैव भयभीत रहना अपकारी है किन्तु किसी किसी समय भयभीत होना उपकारी भी होता है। क्रोध महा अनिष्टकारी है किन्तु सयम से क्रोध भी उपकारी होता है। महाभारत का वाक्य है—

"तस्मान्नात्सृजेत्तेजो न च नित्यंमृदुभवेत्।
काले काले तु सम्प्राप्तेऽम्रोपि वा भवेत्॥"

वैदिक समय के लोग यहाँ बोध के बड़े अनुयायी थे जो वस्तु उन्हें सुन्दर और तेजोमय देख पड़ी उसपर बहुत कुछ दत्त-चित्त हो जाते थे उसके सौन्दर्य से आकर्षित हो जैसा सूर्य चन्द्रमा उषा विद्युत् आदि को ईश्वर की बड़ी भारी शक्तिमान देवताओं में गिना। कारण इसका यही है कि वे कोमल और सरल चित्त थे अब के लोगों के समान बाँके तिरछे और मन के मैले न थे। उस समय डाह और ईर्ष्या का वहुत कम प्रचार था जैसा अब है वैसा तब न था कि कोई किसी का ऐश्वर्य नहीं देख सकता। प्रजा को किसी तरह की पीड़ा का नाम भी न था। पैदावारी का छठवाँ हिस्सा केवल राजा को देते थे अब इस समय सब मिल तृतीयाश सम्पूर्ण उपज का राजा निगल लेता है चतुर्थांश में भी जो बच रहता है समय-समय दुर्भिक्ष आदि दैवी उपद्रव के कारण सुख और स्वास्थ्य प्रजा के लिये दुर्लभ है। पुराने ऋषि मुनि अपने बोध और मनोयोग के उपरात जो विचारते थे उसमें द्वेष-बुद्धि और पक्षपात का दखल नहीं होने पाता था इसी लिये वे आप्त कहलाये और उनके विचार या खयाल सर्वथा सत्य होते थे मिथ्या का कहीं उसमें लेश भी न था। बहुत से यूरोप खण्ड निवासी साधारण ज्ञान (कॉमन-

सेन्स) के पक्षपाती हैं वे कहते हैं; किसी वस्तु के विचार में बहुत-सा तर्क-वितर्क व्यर्थ है केवल साधारण ज्ञान के द्वारा कार्य करना चाहिये। उन लोगों का यह भी मत है कि साधारण ज्ञान बिना विचार के उत्पन्न होता है अर्थात् ऐसा ज्ञान मन का एक स्वाभाविक धर्म है। हमारे देश मे उसे साधारण ज्ञान न कह, समझना, जी मे बैठना, मालूम पड़ना इत्यादि शब्दों का प्रयोग उसके लिये करते हैं। साधारण ज्ञान सदा सत्य नहीं होता कितने ऐसे विषय हैं जिनकी युक्ति साधारण ज्ञान के भीतर नही आती और जिसका विचार करने को हमारा साधारण ज्ञान समर्थ भी नही है। बहुधा द्वेष-बुद्धि ईर्ष्या इत्यादि के कारण मिथ्या होती है इसलिये जिसे समझना कहेंगे उसमे आधा साधारण ज्ञान रहता है और आधा द्वेष आदि के कारण मिथ्या बोध है। उत्कृष्ट बोध, साधारण ज्ञान और सर्वोत्कृष्ट युक्ति तीनो से उनका समझना रहित होता है। भारत के कुदिन तभी से आये जब से लोगों मे ऐसी समझ का प्रचार हुआ। वेद के समय जब ब्राह्मणो का यहाँ पूरा आधिपत्य रहा ऊपर लिखी हुई तीनों बातें उत्कृष्ट बोध, साधारण ज्ञान, सर्वोत्कृष्ट युक्ति, अच्छी तरह प्रचलित थीं, अब केवल समझ शेष रही।

शेष मे अब हम यह कहा चाहते हैं कि युक्ति और उत्कृष्ट बोध दोनों की चेष्टा हमें करना चाहिए बिना बोध (फीलिंग) कोई साधारण कार्य भी नहीं सिद्ध हो सकता और बिना युक्ति के सत्य-विचार मन में नहीं आ सकता इसलिये अपनी उन्नति चाहने वाले को दोनों का मनो-वाक् काय से सदा सेवन करना चाहिये। परन्तु पहले युक्ति द्वारा सिद्ध कर ले कि यह काम उपकारी है तब अपनी अभिरुचि प्रकाश करें। धीरे-धीरे उस काम के करने मे एक प्रकार का बोध पैदा हो जायगा तब उसके करने में उत्साह बढ़ेगा। इसी बोध के बढ़ने से स्वाधीनता प्रिय लूथर ने कैथॉलिकों के अत्याचार से समस्त यूरोप को बचा रक्खा और वाशिंगटन ने अमेरिका का स्वच्छन्द कर दिया।

यहाँ के लोग ऐसे बोध-शून्य हैं कि किसी निरपराधी दुखी बेचारे पर अत्याचार होते देख मुँह फेर लेते हैं। हम नहीं जानते ऐसो के जीवन का क्या फल जिनसे कुछ उपकार साधन न हुआ। वर्तमान् महा-दुर्भिक्ष मे कितनो की बन पड़ी है जो कभी अन्न का रोजगार नही किये थे वे भी इस समय रोज़गारी बन बैठे हैं। सरकार की ओर से बड़ी-बड़ी कोशिश पर भी कि अन्न सस्ता बिके उनके कारण नही बिकने पाता इत्यादि बोध-शून्यता के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जिसे विशेष पल्लवित करना केवल पिष्टपेषण-मात्र है।

अगस्त; १८९६

३—आत्मत्याग

आत्म-निर्भरता के समान आत्म-त्याग भी देश के कल्याण का प्रधान अङ्ग है। हमारे देश मे आत्मत्याग का बीज भी वैसा ही क्षीण हो गया है जैसा आत्म निर्भरता का। अचरज है जहाँ के इतिहासो मे दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र, वलि, करण इत्यादि महापुरुषो के अनेक उदाहरण से आत्म-त्याग की कैसी उत्कर्षता दिखलाई गई है, जिन महात्माओं ने दूसरो के लिये अपने अमूल्यजीवन को भी कुछ माल न समझा वहाँ के लोग अब कहाँ तक स्वार्थपरायण पाये जाते हैं कि जिसकी हद्द नहीं है। बहुधा बेटा भी बाप के मुकाबिले तथा बाप बेटे के मुकाबिले किसी बात मे जरा अपना नुकसान नही बरदाश्त किया चाहता। इस अश में सीधे-सादे हमारे पुराने ढर्रे वाले फिर भी सराहना के लायक है जिनमे शील-सकोच से, कभी को धर्म के खयाल से किसी न किसी रूप मे आत्मत्याग की जड़ नही टूटी वरन् कुछ न कुछ इसकी वासना एक तरह पर घिसलती हुई चली जा रही है। नई तालीम तो आत्मत्याग के लिये मूलोच्छेदी कुठार हुई। हुआ चाहे जो इसके बानी-मुबानी हैं उनमे जब यहाँ तक स्वार्थपरता है कि स्वार्थ के पीछे अन्धे दया, सहानुभूति और न्याय को बहुत कम आदर दें हमारे नस-नस का रस निकाले लेते हैं तो उनकी दी हुई तालीम मे आत्मत्याग का वह गुण कहाँ से आ सकता है जिसके उदय होने से अपनापन का नीचा ख्याल या तो जाता ही रहता है या यह इस हद्द को पहुँचता है कि जगत् भर उसे सब अपना ही दीखता है पराया उसको कोई रही नहीं जाता।

'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्'

हम लोग जो इस समय सब भाँति क्षीण हो गये हैं इसलिये "क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति" इस वाक्य के अनुसार हममें आत्मत्याग की

वासना बहुत कम हो गई है। किन्तु वहाँ और के मुक़ाबिले खुदगर्ज़ी को अलबत्ता बेहद दख़ल है। आपस मे आत्मत्याग और सहानुभूति ज्यों की त्यो कायम है। लकाशायर वालों की बड़ी हानि के ख्याल से रुई के माल पर "इम्पोर्ट ड्यूटी का" न लगना गवर्नमेंट की हाल की कार्रवाई इस बात की गवाही है। इस खुदगर्ज़ी के लिये जो सरासर अन्याय और धर्मनीति के विरुद्ध है अँगरेजी गवर्नमेण्ट को दुनिया की और सलतनतें नाम रखती हैं पर वहाँ - "स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता" का सिद्धान्त सब को दबा रहा है।

हमारे यहाँ नई तालीम ने कुछ निराला ही रग दिखलाया। जबान से कहो आत्मत्याग "सेल्फ-सेक्रिफाइस" दिन भर चिल्लाया करै, काम पड़ने पर एक दूसरे के लिये छूरी तेज किये ताका करते है। पुराने क्रम वाले धर्म और ईश्वर के भय से बहुत से अनुचित कामो से अपने को बचाते हैं यहाँ सो भी नहीं है क्योंकि तालीम पाकर जो ईश्वर मे श्रद्धा और धर्म की ओर झुकावट हुई तो समझना चाहिये उसे पूरी-पूरी तालीम नही दी गई। समाज के बन्धन से छुटकारा, स्वच्छन्दाचार, बेरोक टोक स्वच्छन्द आहार-विहार इत्यादि कई एक बातें नई तालीम के सूत्र हैं। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि भिन्न-भिन्न समाजों मे जो ये कपटी घुसा करते हैं और उन उन समाजो के बड़े पक्षपाती है सो इसीलिये कि ये समाज उनको आत्मसुखरत होने के लिये ढाल का काम दे रही हैं। यद्यपि इन समाजों के प्रवर्त्तक महापुरुष आत्मत्याग के नमूना हो गये हैं, उनका कभी यह प्रयोजन नहीं था कि केवल आत्मसुखेच्छा और समाज-बन्धन मे छुटकारा पाने के लिये तथा यत्किञ्चित् बचे-बचाये आत्मत्याग के उसूलों को नहस-नहस करने के लिये उनकी समाज मे लोग दाखिल हों। अस्तु, हमारे दिन अभी अच्छे नहीं हैं दैव हमसे प्रतिकूल है जो कुछ पाप हिन्दू जाति ने बन पड़ा है और बराबर बनता जाता है जब तक उसका भरपूर मार्जन न हो लेगा तब तक जो कुछ उपाय भी इस बिगड़ी

क़ौम के बनाने का किया जायगा उसका उलटा ही फल होगा । जब कभी हमारे सुदिन आवेंगे आत्मत्याग आत्मगौरव आत्मनिर्भर आदि श्रेष्ठगुण सभी यहाँ आय बसेरा करने लगेंगे ।

यह आत्मत्याग के अभाव का बाइस है जिससे हम अपने लोगो' मे किसी का विलाइत जाना पसन्द नही करते । आत्मत्याग मन मे जगह किये हो तो कभी सम्भव है कि हम वहाँ के आमोद-प्रमोद मे फँस विगड़ कर वहाँ से लौटे और वहाँ से आय अपने देशी भाइयों को जानवर समझ उन से घिन करने लगे । सच तो यो है कि यदि आत्म त्याग के सिद्धान्त पर हम दृढ हो तो विलायत जाने की आवश्यकता ही क्या रहै ?

"पथ्ये सति गतार्तस्य किमौषधि निषेवणैः ।
पथ्येऽसति गतार्तस्य किमौषधि निषेवणैः" ॥

पथ्य से रहने वाले रोगी को दवा के सेवन से क्या ? पथ्य से न रहने वाले रोगी को दवा से क्या ? जो कौम हम पर इस समय हुकूमत कर रही है उससे हम किस बात मे हेठे हे बुद्धि, विद्या, उद्यम, व्यवसाय अध्यवसाय, योग्यता, क्षमता क्या हम मे नहीं है ? बल्कि काम पड़ने पर हर एक बातो मे सबक़त ले गये और उन्हे अपने नीचे कर दिया । एक आत्मत्याग की ऐसी भारी कसर लगी चली आ रही है कि जिससे हमारे यावत् अच्छे-अच्छे गुण सब फीके मालूम होते हैं । जैचन्द और पृथ्वीराज आपस मे लड़ न जानिये किस कुसाइत से इसकी जड़ उखाड़ कर फेक दिया कि यह बिरवा फिर यहाँ न पनपा । स्नेह, मैत्री, दया, वात्सल्य, श्रद्धा, अनुराग की पुण्यमयी प्रतिमा आत्मत्याग के पूजने वाले वे ही भाग्यवान् नर हैं जिन पर दयालु परमात्मा की कृपा है । भाग्यहीन भारत उस सौम्यमूर्ति के पूजन मे रुचि और श्रद्धा न रख सब गुन आगर होकर भी दुःख सागर मे डूबता हुआ निस्तार नही पाता । हमारे पूर्वजों ने चार वर्ण की प्रथा इसी आत्मत्याग के मूल पर चलाया था—

ब्राह्मण जो निर्लोभ हो कठिन से कठिन तपस्या और उत्कृष्ट विद्या उपार्जन करते थे सो इसीलिये कि वे अपनी तपस्या और विद्या के द्वारा प्रजा के कल्याण की सामर्थ्य प्राप्त करैं। अब वे ही ब्राह्मण निपट स्वार्थ-लम्पट हो आत्मत्याग की गन्ध भी अपने में नही रखते और जैसा कदर्य और स्वार्थान्ध ये हो गये वैसा चार वर्ण में दूसरे नही। आत्मत्याग की वासना से दूसरे का उपकार सोचना कैसा ? यही चाहते हैं कि प्रजा को मूर्ख किये रहैं जिसमे इनके नेत्र न खुलने पावें नही तो हमारे दम्भ की सब कलई खुल जायगी ? इसी तरह पहिले क्षत्रिय प्रजा की रक्षा के लिये शत्रु के सामने जा कूदते थे और युद्धक्षेत्र मे अपना जीवन होम कर देते थे अब क्षत्री भी वैसे नही देखे जाते जिनमे आत्मत्याग की वासना बन रही हो। साराश यह कि देश के कल्याण के लिये आत्मत्याग हमारे लिये वैसी ही आवश्यक है जैसी आत्मनिर्भरता। जातीयताभिमान या कौमियत का होना इन्ही दोनो की युगल जोड़ी के आधीन है बिना जिनके हम और और गुणों से भरे-पूरे होकर भी भीरु, कायर, क्रूर, कुचाली, अशक्त, असमर्थ आदि बदनामी की माला पहिने हैं, जब कि और और लोग अनेक निन्दित आचरण के रहते भी सभ्यता की राह दिखलाने वाले हमारे गुरु बनते हैं सो इसी युगल जोड़ी के प्रताप से।

नवम्बर; १८९२

४—हृदय

हमारे अनुमान से उस परम नागर की चराचर सृष्टि मे हृदय एक अद्भुत पदार्थ है देखने मे तो इसमें तीन अक्षर हैं पर तीनों लोक और चौदहों भुवन इस तिहर्फी (अक्षर) शब्द के भीतर एक भुनगे की नाईं दवे पड़े हैं। अणु से लेकर पर्वत पर्य्यन्त छोटे से छोटा और वड़े से वड़ा कोई काम क्यो न हो बिना हृदय लगाये वैसा ही पोच रहता है जैसा युगल-दन्त की शुभ्रोज्ज्वल खूटियो से शोभित श्याम मस्तक वाले मदश्रावी मातङ्ग को कच्चे सूत के धागे से बाँध रखने का प्रयत्न अथवा चचल कुरङ्ग को पकडने के लिए भोले कछुए के बच्चे को उद्यत करना। आँख न हो मनुष्य हृदय से देख सक्ता है पर हृदय न होने से आँख वेकार है। कहावत भी तो है "क्या तुम्हारे हिये की भी फूटी हैं, हृदय से देखो, हृदय से वोलो· हृदय से पूछो, हृदय मे रक्खो, हिए जिये से काम करो हृदय मे कृपा वनाये रक्खो। किसी का हृदय मत दुखाओ। अमुक पुरुप का ऐसा नम्र हृदय है कि पराया दुख देख कोमल कमल की दण्डी सा झुक जाता है। अमुक का इतना कठार है कि कमठ पृष्ठ की कठोरता तक को मात करता है। कितनो का हृदय वज्रा-घात सहने को भी समर्थ होता है। कोई ऐसे भीरु होते हैं कि समर सम्मुख जाना तो दूर रहा कृपाण की चमक और गोले की धमक के मारे उनका हृदय सिकुड़ कर सोंठ की गिरह हो जाता है। किसी का हृदय रणक्षेत्र मे अपूर्व विक्रम और अलौकिक युद्ध-कौशल दिखाने को उमगता है। एव किसी का हृदय विपुल और किसी का सकीर्ण किसी का उदार और किसी का अनुदार होता है। विभव के समय यह समुद्र की लहर से भी चार हाथ अधिक उमड़ता है और विपद-काल मे सिमट कर रबड़

की टिकिया रह जाता है। सतोगुण की प्रवृत्ति मे राज-पाट तक दानकर संकुचित नहीं होता, रजोगुण की प्रवृत्ति मे बालकी खाल निकाल झींगुरों की मुस्के बाँधता है। फलतः प्रेम, करुणा, प्रीति, भक्ति माया, मोह आदि गुणों का प्रकृत-दशा मे कभी कभी को ऐसा प्रभाव होता है कि उसका वर्णन कवियों की सामर्थ्य से बाहर हो जाता है उसके अनुभव को हृदय ही जानता है मुँह से कहने को अशक्य होता है। यदि यह बात नही है तो कृपाकर बताइये चिरकाल के बिछुरे प्रेमपात्रों के परस्पर सम्मिलन और इकटक अवलोकन मे हृदय को कितनी ठंढक पहुँचती है वा सहज अधीर, स्वभावतः चंचलमृदु बालक जब बड़े आग्रह से मचल कर धूलि मे लोटते हैं वा किसी नई सीखी बात को बालस्वभाव से दुहारते हैं उस काल उनके मुँह-मुकुर पर जो मनोहर छवि छाती है वह आपके हृदय पर कितना प्रेम उपजाती है वा जिसको हम चाहते है वह गोली भर टप्पे से हमे देख कतराता है तो उसकी रुखाई का हृदय पर कितना गम्भीर घाव होता है? अथवा बहु-कुलीन महादुखी जब परस्पर असकुचित चित्त मिलते और अत्रुटित बातों मे अपना दुखड़ा कहते हैं उस समय उनके आश्वासन की सीमा कहाँ तक पहुँचती है? शुद्ध एवं संयमी, नारायण-परायण को प्रभु-कीर्त्तन और भजन मे जो अपूर्व आनन्द अलौकिक सुख मिलता है वा प्राकृतिक शोभा देख कवि का हृदय जो उल्लास, शान्ति और निस्तब्ध भाव धारण करता है उसका तारतम्य कितना है पाठक हमारे लिखने के ये सब सर्वथा बाहर हैं; अपने आप जान सकते हो।

भक्तिरस पगे हुए महात्मा तुलसीदास जी राघवेन्द्र राघो की प्रशसा मे कहते हैं—

"चितवनि चारु मारु मदहरनी। भावत हृदय जाय नहि बरनी॥"

इससे जान पड़ता है कि हृदय एक ऐसी गहरी खाड़ी है जिसकी थाह विचारे जीव को उसमे रहने पर भी कभी-कभी उस भाँति नहीं मिलती जैसे ताल की मछलियाँ दिन-रात पानी में बिलबिलाया

करती है पर उसकी थाह पाने की क्षमता नही रखतीं। जब अपने ही हृदय का ज्ञान अपने को नही है तो दूसरे के मन की थाह ले लेना तो बहुत ही दुस्तर है। तभी तो असाधारण धीमानों की यह प्रशंसा है "अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः" कि बिना कहे वे दूसरे के हृदय का भाव कभी-कभी लख लेते हैं। तो भी निस्सन्देह दूसरे को हृदय की थाह लगाना बड़ा दुरन्त है। न जाने इस हृदयागार का कैसा मुँह है पण्डित लोग कुछ ही कहे हमारी जान तो इसका स्वरूप स्वच्छ स्फटिक की नाईं है। इसी से हर चीज़ का फोटू इसमे उतर जाता है! जिस भाति सहस्राश की सहस्र-सहस्र किरणे निर्मल बिल्लौर पर पड़कर उसके बाहर निकल जाती हैं इसी तरह सैकड़ो बाते, हजारों विषय जो दिन रात मे हमारे गोचर होते है हृदय के शीशे के भीतर धसते चले जाते हैं और समय पर ख्याल के काग़ज़ मे तस्वीर बन सामने आ जाते हैं। इसमे कोई जल्द फहम होते हैं कोई सौ-सौ बार बताने पर नहीं समझते। उनका हृदय किसी ऐसी चिन्ता-कीट से चेहटा रहता है कि वह आवरण होकर रोक करता है जिस तरह अक्स लेने के लिये शीशे को पहिले खूब धो-धुवाकर साफ कर लेते हैं इसी भाति सुन्दर बात को धारण के लिये हृदय की सफाई की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

राजर्षि भर्तृहरि का वाक्य है "हृदिस्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैक-वृतफलम" अर्थात् हृदय स्वच्छवृत्ति से और कानशास्त्र श्रवण से बड़ाई के योग्य होते हैं। यह स्वच्छ थैली जिन के पास है वही सदाशय हैं, वही महाशय हैं और वही गम्भीराशय हैं उन्हे चाहे जिन शुभ नामो से पुकार लीजिये। और जिन की उदरदरी मे इसका अभाव है वे ही दुराशय, क्षुद्राशय, नीचाशय, ओछे, छोटे और पेट के खोटे हैं। देखो सहृदय के उदाहरण ये लोग हुये हैं। सूर्य्यवंश शिरोमणि दशरथात्मज रामचन्द्र को करालो कैकेयी ने कितना दुःख दिया था बारह वर्ष वनके असीम आपदो का क्लेश, नयन ओट न रहने वाली सती सीता का विरहजन्य शोक, स्नेहसागर पिता का सदा के लिये

वियोग; ये सब सहकर उनका शुद्ध हृदय उस सौतेली माँ से पुनर्मिलन में समर्थ हुआ। आज कल के ओछे पात्र माँ-बाप की तिरछी आँख की आँच न सहकर कह बैठते हैं कि हमारा तो उनकी तरफ से हिरदै फट गया। प्रिय पाठक, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी एक बड़े विशद और विशालहृदय के मनुष्य थे, जिन्होंने लोगों की गाली-गलौज, निन्दा-चुगली आदि अनेक असह्य बातों को सह कर उनके प्रति उपकार से मुँह न मोड़ा। आज जिनका विपुल हृदय मानो निकल कर सत्यार्थ प्रकाश बन गया है। एक बार यहाँ के चन्द लोगों ने कहा कि वह नास्तिक मुँह देखने याग्य नहीं है। यह सुन कर कुछ भी उनकी मुखश्री मलिन न हुई और किसी भाँति माथे पर सिकुड़न न आई। गम्भीरता से उत्तर दिया कि यदि मेरा मुँह देखने मे पाप लगता है तो मै मुँह ढाँप लूँगा पर दो दो बाते तो मेरी सुन लें। बस इसी से आप उनके बृहत् हृदय का परिचय कर सकते हैं। किसी ने सच कहा है:—

"सज्जनस्य हृदयंनवनीतं यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।
अन्यतेहविलसत्परितापात्सज्जनो द्रवतिननवनीतम्॥"

एक सहृदय कहता है कि कवियों ने जो सज्जनों के हृदय की उपमा मक्खन से दी है वह बात ठीक नहीं है। क्योंकि सत्पुरुष पराया दुःख देख पिघल जाते हैं और मक्खन वैसा ही बना रहता है। बस प्यारो, यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार हृदयों का अनुकरण करो, ऐसे ही हृदय दूसरो के हृदयों मे क्षमा, दया, शान्ति, तितिक्षा, शील, सौजन्यता, सच्ची आस्तिकता और उदारता का बीर्य्यारोपण करने मे योग्य होते हैं और सच्चे सुहृद कहाते हैं।

(भारत सुदशाप्रवर्त्तक से)

अक्तूबर; १८८७

— ———

५—मन और प्राण

मनुष्य के शरीर मे ये दोनों बड़े काम के है। ऐ हमने क्या कहा मनुष्य के शरीर मे है ? और है तो कहाँ पर हैं ? आप कहेंगे यह प्राण वायु गिनती मे पाँच है और सपूर्ण शरीर भर मे व्याप्त है।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि मण्डले।
उदानः कण्ठ देशस्थो व्यान. सर्वं शरीरग.॥

हृदय मे प्राण वायु है, गुदा मार्ग से जो हवा निकलती है उसका नाम अपान है, समान नामक वायु का स्थान नाभि मण्डल है, कण्ठ देश मे जो वायु हैं जिस से डकार होती है वह उदान वायु है और व्यान नामक वायु है सो सपूर्ण शरीर मे व्याप्त रह रक्त-सचालन करता है। अस्तु, प्राण की व्यवस्था तो हो चुकी अब बतलाइये आप का मन कहाँ है हृदय मे या मस्तिक मे या सर्वेन्द्रिय मे फैला हुआ होकर जुदी-जुदी इन्द्रियो के जुदे-जुदे कामो का ज्ञान मन स्वय अनुभव करता है। लोग कहते हैं जो कोई किसी का प्राण ले उसके बदले में जब तक उसका प्राण भी न लिया जाय तब तक बदला नही चुकता किन्तु मन जब कोई किसी का ले लेता है वह उसी का हो जाता है। ईश्वर न करै हमारा मन किसी पर आ जाय तब हम को उसका दास बन जाना पड़ेगा। न विश्वास हो किसी नवयुवा, नवयुवती से पूछ लो जिसका मन बहुत जल्द छिन जाता है। ससार मे यही एक ऐसी वस्तु है कि हरजाने पर फिर नही लौटायी जा सकती है। सच पूछिये तो कवियो को प्रणयिनी-प्रणयी यही दोनों के आपस मे मन हर लेने के किस्सों का कविता के लिये बड़ा सहारा है। भवभूति के 'मालतीमाधव मे', कोकिल-कण्ठ जयदेव के 'गीत गोविन्द' मे, महा कवि श्री हर्ष के 'नैषध' मे, सम्पूर्ण ग्रन्थ भर मे यही है और अनेक अनूठी उक्ति, युक्ति की नई-नई छटाये

दी गई हैं, सिवाय इसके लैला-मजनू और यूसफ जुलेख़ा के किस्सों की भी यही बुनियाद है। वास्तव मे हरा तो जाता है मन पर प्रणयिनी या प्रणायी की वियोग जनित यातना प्राणही को भोगना पड़ता है। 'विक्रमोर्वशी' नाटक मे पुरुरवा का मन उर्वशी से छिन जाने पर पुरुरवा को जो जो यातना भोगनी पड़ी केवल उतनाही उस नाटक का एक मात्र विषय है। किसी कवि ने किसी नायिका के अग की कोमलता के वर्णन मे वड़ी अनूठी उक्ति-युक्ति का यह श्लोक दिया है—

"तव विरहविधुरबाला सद्यः प्राणान्विमुक्तवती।
दुर्लभमोदृशमंगं मत्वा न ते तामजहुः"॥

किसी वियोगिनी का वृत्तान्त कोई उसके प्रणयी से कहता है—उस वाला ने तुम्हारे वियोग में विधुरा हो तत्काल प्राण त्याग कर दिया; किन्तु ऐसे कोमल अग अपने रहने के लिये अव और कहाँ मिलने वाले हैं यह समझ प्राणों ने उसे न छोड़ा। और भीः—

अपसारय घनसारं कुरू हारं दूर एव किं कमलै"
अलमालमालि मृडालैरिति रूदति दिवानिशं वाला॥
किंकरोमि क्वगच्छामि रामो नास्ति महीतले।
कान्ता विरहजं दुःखमेको जानाति राघवः॥

मन और प्राण दोनों एक वस्तु हैं कि दो और ये दोनों क्या वस्तु हैं और कैसे इन दोनों की आप विवेचना करेंगे ? यह रोशनी है - हवा है विद्युत शक्ति है—या कोई दूसरी वस्तु है। दोनो मिलके काम करते हैं कि अलग अलग ? जो मिलके काम करते हैं तो जब प्राण निकल जाता है तब मन कहाँ रहता है ? प्राण के आधीन मन है कि मन के आधीन प्राण ? जिसमे प्राण रहता है उसे प्राणी कहते हैं जिसमे मन है वह मनई है। वह क्या है जिसके आधीन ये दोनों हैं अर्थात् जो वह कह रहा है हम बड़े हैं, हम छोटे हैं, हमारा प्राण निकल गया, हमारा मन हर गया, हमारा मन नहीं चाहता, मन नहीं लगता, यह

सब कहने वाला कोई तीसरा व्यक्ति है या इन्ही दोनो का मेल है, और ये दोनो घटते बढते हैं या जैसे के तैसे बने रहते हैं ? सुना है योगी-जन प्राण ब्रह्माण्ड में चढा वर्षो तक उसे अलग रख लेते हैं। हिन्दू मुसलमान तथा अगरेजो मे ऐसे ऐसे विद्वान् हुये हैं जिन्होने मन की बडी-बड़ी ताकतें प्रगट की हैं - मिसमेरेजिम इत्यादि। थियोसोफिस्ट लोगों के लिये मन बडी भारी चीज है जिसके सम्बन्ध मे वे लोग अब तक नई-नई बात निकालते जाते हैं। मुसलमानो में रोशन-जमीर किसे कहते हैं ? योग शास्त्र मे जैसा इसका विस्तार है उसका वर्णन करने लगें तो न जानिये कै बड़े बड़े ग्रन्थ इसके बारे मे लिखे जा सकते हैं। हमारे प्राचीन आर्यो ने मन के सम्बन्ध मे जहाँ तक तलाश किया है वैसा अब तक किसी कौम के लोगों ने नही किया।

मनः कृतं कृत लोके न शरीरकृत कृतम्।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥

जो कुछ काम हम करते हैं वह मन का किया होता है। हाथ-पाँव से हम काम करते हैं सही पर मनोयोग जब तक उस काम पर न हो तब तक वह काम काम न समझा जायगा। बन्धन मे पड़ जाने का या बन्धन से मुक्त होने का हेतु केवल मन है। योग-वाशिष्ट और भग-वद्गीता मे मन के सम्बन्ध में अनेक बातें लिखी हैं पर प्राण-मिश्रित मन के बारे मे जो हमारे अनेक तर्क-वितर्क हे, उनका उत्तर कहीं से नही मिलता और यह पहेली बिना हल हुये जैसी की तैसी रही जाती है।

अगस्त, १८९७

६—दृढ़ और पवित्र मन।

मन की तुलना मुकुर के साथ दी जाती है जो बहुत ही उपयुक्त है। मुकुर में तुम्हारा मुख साफ तभी देख पड़ेगा जब दर्पण निर्मल है। वैसा ही मन भी जब किसी तरह के विकार से रहित और निर्मल है तभी मनन जो उसका व्यापार है भलीभाँति बन पड़ता है। तनिक भी बाहर की चिन्ता या कपट तथा कुटिलाई की मैल मन पर संक्रामित रहे तो उसके दो चित्त हो जाने से सूक्ष्म विचारों की स्फूर्ति चली जाती है। इसी से पहिले के लोग मन पवित्र रखने को वन में जा बसते थे; प्रातःकाल और साँझ को कहीं एकान्त स्थल में स्वच्छ जलाशय के समीप बैठ मन को एकाग्र करने का अभ्यास डालते थे। मन की तारीफ में यजुर्वेद संहिता की ३४ अध्याय में ५ ऋचायें हैं जो ऐसे ही मन के सम्बन्ध में है जो अकलुषित, स्वच्छ और पवित्र हैं। जल की स्वच्छता के बारे में एक जगह कहा भी है "स्वच्छं सज्जनचित्तवत्" यह पानी ऐसा स्वच्छ है जैसा सज्जन का मन। अस्तु, उन ५ ऋचाओं में दो एक को हम यहाँ अनुवाद सहित उद्धृत कर अपने पढ़ने वालों को यह दिखाया चाहते हैं कि वैदिक समय के ऋषिमुनि मन की निगासोकी को कहाँ तक परिस्कृत किये थे।

> "यस्मिन्नृच. सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
> यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
> सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन।
> हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु" ॥

रथ की नाभि में जैसे आरा सन्निविष्ट रहते हैं वैसा ही ऋग् यजु साम के शब्द समूह मन में संनिविष्ट हैं। पट में तन्तु समूह जैसा ओत

प्रोत रहते हैं वैसा ही सब पदार्थों का ज्ञान मन में ओत-प्रोत है। अर्थात् मन जब अकलुषित और स्वस्थ है तभी विविध ज्ञान उसमें उत्पन्न होते हैं, व्यग्र हो जाने पर नहीं। जैसे चतुर सारथी घोडो को अपने आधीन रखता है और लगाम के द्वारा उनको अच्छे रास्ते पर ले चलता है वैसे ही मन हमें चलाता है। तात्पर्य यह कि मन देह रथ का सारथी है और इन्द्रियाँ घोड़े है—चतुर सारथी हुआ तो घोड़े जब कुपन्थ पर जाने लगते हैं तब लगाम कड़ी कर उन्हे रोक लेता है। जब देखता है रास्ता साफ है तो बागडोर ढीली कर देता है वैसा ही मन करता है। जिस मन की स्थिति अन्तःकरण में है जो कभी बुडाता नही जो अत्यन्त वेग गामी है वह मेरा मन शान्त व्यापार वाला हो—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गम ज्योतिषा ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसकल्पमस्तु॥

चक्षु आदि इन्द्रियाँ इतना दूर नही जातीं जितना जाग्रते हुये का मन दूर से दूर जाता है और लौट भी आता है। जो देव अर्थात् दिव्य ज्ञान वाला है। आध्यात्मिक सम्बन्धी सूक्ष्म विचार जिस मन में आसानी से आ सकते हैं। प्रगाढ निद्रा का सुषुप्ति अवस्था में जिस का सर्वथा नाश हो जाता है। जागते ही जो तत्क्षण फिर जा उठता है। वह मेरा मन शिव सकल्प वाला हो अर्थात् सदा उसमे धर्म ही स्थान पावे पाप मन से दूर रहे।

मन के बराबर चंचल ससार में कुछ नही है। पतञ्जलि महामुनि ने उसी चचलता को रोक मन के एकाग्र रखने को योग दर्शन निकाला। यूरोप वाले हमारी और और विद्याओं को तो खीच ले गये पर इस योग दर्शन और फलित ज्योतिष पर उनकी दृष्टि नही गई सो कदाचित् इसी लिये कि ये दोनों आधुनिक सभ्यता के साथ जोड नही खाते। इस तरह के निर्मल मन वाले सदा पूजनीय हैं। जिन के मन में किसी

तरह का कल्मष नहीं है द्रोह, ईर्ष्या, मत्सर, लालच तथा काम-वासना से मुक्त जिनका मन है उन्ही को जीवन्मुक्त कहेगे।

बुद्ध और ईसा आदि महात्मा दत्तात्रेय और याज्ञवल्क्य आदि योगी जो यहाँ तक पूजनीय हुये कि अवतार मान लिये गये उनमे जो कुछ महत्व था सो इसी का कि वे मन को अपने वश मे किये थे। जो मन के पवित्र और दृढ हैं वे क्या नही कर सकते। संकल्प सिद्धि इसी मन की दृढता का फल है। शत्रु ने चारो ओर से आके घेर लिया, लडने वाले फौज के सिपाहियो के हाथ पाँव फूल गये भाग के भी नहीं बच सकते, सबों की हिम्मत छूट गई, सब एक स्वर से चिल्ला रहे हैं हार मान अब 'ईल्ड' शत्रु के सिपुर्द अपने को कर देने ही मे कल्याण है, कैदी हो जायगे बला से जान तो बची रहेगी। पर सेनाध्यक्ष 'कमाडर' अपने सकल्प का दृढ है सिपाहियों के रोने गाने और कहने सुनने से विचलित नही होता; कायरो को सूरमा बनाता हुआ रण भूमि मे आ उतरा; तोप के गोलों का आघात सहता हुआ शत्रु की सेना पर जा टूटा; द्वन्द्व युद्ध कर अन्त को विजयी होता है। ऐसा ही योगी को जब उसका योग सिद्ध होने पर आता है तो विघ्न रूप जिन्हें अभियोग कहते हैं होने लगते हैं इन्द्रियों को चलायमान करने वाले यावत् प्रलोभन सब उसे आ घेरते हैं। उन प्रलोभनो मे फँस गया योग से भ्रष्ट हो गया। अनेक प्रलोभन पर भी चलायमान् न हुआ दृढ बना रहा तो अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ उसकी गुलाम बन जाती हैं योगी सिद्ध हो जाता है। ऐसा ही विद्यार्थी जो मन और चरित्र का पवित्र है दृढ़ता के साथ पढ़ने में लगा रहता है पर बुद्धि का तीक्ष्ण नहीं है; बार बार फेल होता है तो भी ऊब कर अध्ययन से मुँह नहीं मोड़ता; अन्त को कृतकार्य हो ससार मे नाम पाता है। बड़ी से बड़ी कठिनाई में पड़ा हुआ मन का पवित्र और दृढ़ है तो उसकी मुशकिल आसान होते देर नहीं लगती। आदमी मे मन की पवित्रता छिपाये नहीं छिपती न कुटिल और कलुषित मन वाला छिप सकता है।

ऐसा मनुष्य जितनाही ऊपरी दाँव-पेच कुत्रिपनी टल ाई छिपाने को करता है उतनाही बुद्धिमान् लाग जो ताडबाज़ हैं ताड़ लेते हैं। कहावत हे ' मन से मन को राहत है" "मन मन को पहचान लेता है" । पहली कहावत के यह माने समझे जाते हैं कि जो तुम्हारे मन मे मैल नहीं है वरन तुम बड़े सीधे और सरल चित्त हो तो दूसरा कैसा ही कुटिल और कपटी है तुम्हारा और उसका किसी एक खास बात मे सयोग-वश साथ हो गया तो तुम्हारे मन को राहत न पहुँचेगी। जब तक तुम्हारा ही सा एक दूसरा उसमे पड़ तुम्हे निश्चय न करादे कि इसका विश्वास करो हम इसके विचवई होते हैं। दूसरी कहावत के मतलब हुये कि हम से कुटिल और चाल बाज़ का हमारे ही समान कपटी चालाक का साथ होने से पूरा जोड़ बैठ जाता है।

मस्तिष्क, मन, चित्त, हृदय, अन्तःकरण, बुद्धि ये सब मन के पर्याय शब्द हैं। दार्शनिकों ने बहुत ही थोड़ा अन्तर इनके जुदे जुदे 'फक्शन्स' कामों मे माना है—अस्तु हमारे जन्म की सफलता इसी मे है कि हमारा मन सब वक्रता और कुटिलाई छोड़ सरल-वृत्ति धारण कर, भगवद्चरणारविन्द के रसपान का लोलुप मधुप बन अपने आधार जीवन को इस ससार मे सारवान् बनावे. और तत्सेवानुरक्त महज्जनो की चरण रज को सदा अपने माथे पर चढाता हुआ ऐहिक तथा आमुष्मिक अनन्त सुख का भोक्ता हो; जो निश्चितमेव नाल्पस्यतपसः फलम् है। अन्त को फिर भी हम एक बार अपने वाचक वृन्दों को चिताते हैं कि जो तभी होगा जब चित्त मतवाला हाथी-सा संयम के खूटे मे जकड़ कर बाँधा जाय। अच्छा कहा है—

अप्यस्ति कश्चिल्लोकेस्मिन्येनचित्त मदद्विपः।
नीतः प्रशमशीलेन संयमालानलीनताम्॥

मई १९०६

— —

७—संभाषण

ईश्वर की विचित्र सृष्टि मे संभाषण शक्ति केवल मनुष्यो ही को दी गई है। यदि यह शक्ति मनुष्य मे न होती तो भेड़ बकरी आदि चौपायो जानवर और आदमी मे फिर क्या अन्तर रहता क्योंकि मनुष्य और पशुओ की ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति मे बडा अन्तर न होने पर भी मनुष्य जो पशुओं की सृष्टि से इतना विशिष्ट है कि यह उन पर अपना अधिकार और स्वामित्व जमाये हुये है सो इसी कारण कि जानवर वेचारों को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि मनुष्य की सी सुव्यक्त और सुस्पष्ट बोल चाल के द्वारा अपनी मनोगत बाते दूसरे समीपस्थ जीव से प्रगट कर सके। दो प्रेमियों मे परस्पर प्रेम का अकुर जमाने की पूर्व पीठिका या उपोद्घात पहले सभाषण ही होता है। जिन्होंने कादंबरी कभी पढ़ा है वे जान सकते हैं कि पुण्डरीक और महाश्वेता की कहानी इसका कहाँ तक उपयुक्त उदाहरण है जहाँ उन दो प्रेमियों मे प्रथम प्रथम अखण्ड और सच्चे प्रेम की प्रस्तावना केवल दो चार बात के सलापही से आरंभ हुई है

ससार के ऐसे कोई भी विषय नही हैं जिनके अधिक उपभोग से अन्त को कब न पैदा हो किन्तु एक प्रेमियो के प्रेमालाप ही मे यह शक्ति है कि परस्पर प्रेमासक्त 'लवर्स' के प्रेम प्रकाशक संलाप मे ऊब या उचाट 'मोनोटॉनी' अपना दखल नही कर सकती २४ घंटे का दिन और रात जितनी प्रेम कहानी को काना फुस्की के लिये बहुत कम है। भवभूति महाकवि ने उत्तर चरित मे दो प्रेमालग के प्रेम संलाप का बहुत ही मनोहर और प्राकृतिक चित्र उतारा है—

"किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥"

छोटे-छोटे क्लब कमेटी और कानग्रेस का कौन गिनने बैठे बिलाइत की पार्लियामेंट महासभा जिसपर ब्रिटिश राज्य का कुल दार-मदार है सफेद डाढी वाले बडे-बड़े राज-मन्त्रियो के संभाषण ही का निचोड़ है। सुलह या जग देश का अभ्युत्थान या पतन प्रीवी कौसिल मे बडे-बडे मुकद्दमो का वारा-न्यारा सब सम्भाषण ही का परिणाम है। सम्भाषण का कुछ अद्भुत क्रम है इसके द्वारा बनती हुई बात को न विगडते देर न बिगड़ी बात के बनने ही मे बिलम्ब—

किसी पचाइत मे कोई बड़े भारी मामिले का जिकिर पेश है चिरकाल का विरोध बात की बात मे तै पाता है पंचाइत मे शरीक लोगो के जी मे बरसों की जमी हुई मैल एक दम मे धुल कर साफ हुआ चाहती है इतने मे कोई अकिल के कोते कुन्दे नातराश आ टूट पडे और दो एक ऐसी वेतुक औखी बौखी अरुन्तुद मर्म की बात बाल उठे कि एक-एक आदमी का जी दुख गया पचाइत उठ गई बनने की कौन कहे जन्म भर के लिये ऐसी गाँठ पड़ी कि सुरझाना कठिन हो गया। हिन्दुस्तान के बल पौरुष श्री कीर्ति सब का अन्तकारी महाभारत का घोर सग्राम केवल द्रौपदी के कटु भाषण ही के कारण हुआ मारीच मृग के उपक्रम मे यदि जानकी लक्ष्मण का अपने अरुन्तुद वाक्यो से मर्मताडन न करती तो सीता हरण सा अनर्थ कभी न होता इत्यादि अनेक ऐसे उदाहरण कटु भाषण के इतिहासो मे पाये जाते हैं जिनका परिणाम अन्त को मूलच्छेदी ठाकुर से भी अधिक तीखा देखने मे आया है। जो मनुष्य जिनमे क्रोध की आग परस्पर सुलग रही है तृण अग्नि के संयोग समान दोनों के सभाषण मात्र की कसर उस आग के भभक उठने के लिए रह जाती है उस समय चतुर सयानो का यही काम रहता है कि दोनो की चार आँख होने से उन्हे बचाये रहे और अपना काम भी साध ले "क्यो साँप मरे क्यों लाठी टूटै"—अब मृदु भाषण के गुणों को लीजिये जिनके एक-एक बोल मे मानो फूल झरता है कोकिला लाप का सहोदर

जिनका मृदु और कोमल भाषण सुनने वालो का करण रसायन हो परस्पर दोनो मे मैत्री का दृढ सबन्ध स्थापित कर देता है ऐसों ही के साथ सम्भाषण से मैत्री का नाम साप्तपदीन कहा गया है—

"यतः सतां सन्नत गात्रि संगतं मनोषिभिः साप्त पदीन मुच्यते"

तात्पर्य यह कि जिन्हे बोलने का शऊर है उनके साथ सात लब्ज की बोल चाल दृढ मैत्री संबन्ध स्थिर होने के लिए बहुत है। सहज मे दूसरे का मन अपने मूठी मे कर लेना वही अच्छी तरह जानते हैं जिन्हे बोलने आता है। सब कुछ पढ-लिख भी जिसने बोलना न सीखा उसका पढना-लिखना जन्म-पर्यन्त फीका रहता है। हमारी बात अत्युक्ति न समझी जाय तो हम यह भी कह सकते हैं कि जिन्हें बोलने का ढंग है उनकी सुधास्पर्द्धी बोल चाल से हार मान सुधा जाकर सुरलोक मे छिप रही है।

एक सभाषण खलों का है जिनका बोल सुनते ही कलेजा फट जाता है जिनके मुख कन्दरा मे कभी किसी के लिये शुभ बात निकलते किसी ने सुना ही नहीं—

'अहमेव गुरुः सुदारुणाना मिति हाला हल मास्म तात दृप्यः।
ननु सन्ति भवा दृशानि भूयो भुवने, स्मिन् वचना निदुर्जनानाम्॥

खलों के वचन से खिन्न हो कोई कवि हाला हल महाविष को सम्बोधन कर कहता है—"हे हाला हल यह मत समझो कि हम ससार मे जितने निर्दयी प्राण घातक हैं सबों के गुरू हैं निठुराई मे हमसे बढ कोई हुई नही क्योंकि तुम्हारे समान खलो के अनेक निर्दयी वचन विद्यमान है।'

एक संभाषण चट्ट बाज़ों की गप शप है जिसके कभी कुछ माने हो ही नहीं सकते। पाठक महाशय सम्भाषण बहुत तरह पर होता है पुराने लोग जिनको सहस्रो वर्ष बीते ससार से कभी को सिधार गये किन्तु उनके मस्तिष्क की नई-नई उत्तम कल्पनायें जो मुद्रायन्त्र

अथवा लिखावटों के द्वारा अब तक पाई जाती हैं उन्हे पढ यही बोध होता है मानों हम उनसे प्रत्यक्ष सम्भाषण कर रहे हैं। चिट्ठी-पत्री आधी मुलाकात समझी जाती है और अब तो इस अँगरेज़ी राज्य मे टेलीग्राफ टेलीफान आदि कितने नये तरीके मुलाकात के ऐसे ईजाद हुए हैं जिनके द्वारा हम घर बैठे हज़ार कोस की दूरी पर जो लोग हैं उनसे प्रत्यक्ष के समान बात चीत कर सकते हैं। ग्राहक गण सम्भाषण के इसी क्रम पर आरूढ हो मास मे एकबार हम भी दाल भात मे मूसल चन्द से आप से सभाषण के लिये आ कूदते हैं और नित्य नैमित्तक कार्य मे विघ्न डाल थोडी देर के लिये आप को फँसा रखते हैं उसी की माफी के लिये आज हमने सम्भाषण के जुदे-जुदे तरीके गिनाये हैं जहाँ २४ घटे खाना पीना सोना आदि अपने काम करते हो तहाँ एक छिन हमारे साथ भी गपशप सही।

मई १८८९

८—मनुष्य के जीवन की सार्थकता।

हमारे जीवन की सार्थकता क्या है और कैसे होती है इस पर जुदे-जुदे लोगों के जुदे-जुदे विचार और उद्देश्य हैं, अधिकतर इसका उद्देश्य समाज पर निर्भर है अर्थात् हम जिस समाज मे जैसे लोगो के बीच रहते हैं उनके साथ जैसा बर्ताव रखते हैं उसी के अनुसार हमारे जीवन की सार्थकता समझी जाती है। यद्यपि कवियो ने मनुष्य जन्म की सार्थकता को अपनी अपनी उक्ति के अनुसार कुछ और ढङ्ग की झलका लाये हैं जैसे भारवि ने कहा है:—

> स पुमानर्थवज्जन्मा यस्य नाम्नि पुरस्थिते।
> नान्यामङ्गुलिमभ्येति संख्यायामुद्यताङ्गुलिः॥

पुमान् पुरुष वह है जिसमे पुरुषार्थ का अंकुर हो। सार्थक जन्म वही पुरुष है कि जिसके पौरुषेय गुणो की गणना मे जो अंगुली उसके नाम पर उठे वही फिर दूसरे के नाम पर नही—अर्थात् जो किसी प्रकार के गुण मे एकता प्राप्त किये है संसार मे उसके बराबरी का दूसरा मनुष्य न हो। इस तरह की बहुतेरी कवियो की कल्पनायें पाई जाती हैं किन्तु यहाँ उन कल्पनाओं से हमारा प्रयोजन नहीं है जिसे हम जीवन की सार्थकता कहेंगे वह बात ही निराली है। समाज के बर्ताव के अनुसार सफल जीवन इसे सफलता कहेंगे जैसा—

> यस्य ज्ञानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
> अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्॥

जिसने सकल समय धन के मित्रों में अपने आप में कर लिया; जिसने शत्रुओं को संग्राम में जीता, और भाँति भाँति के गहने और कपड़ों से जिसने स्त्रियों को सन्तोष किया उसी का जीवन सफल है। पर यहीं समाज

जीवन की इयत्ता या ओर छोर है तात्पर्य यह कि जिसने स्वाथ साधन को भरपूर समझा वही यहाँ सफल जन्मा है। बिलाइत मे जब तक अपने देश या जाति के लिये कोई ऐसी बात न कर गुजरा जिसमे सर्व साधारण का कुछ उपकार है तब तक जीवन की सफलता नही कही जा सकती क्योंकि इतना तो जानवर भी कर लेते है—अपने बच्चों को पालना पोषना वे भी भरपूर जानते हैं, जो उनके शत्रु हैं उनसे लड़ना जो उसके साथ भलाई करते हैं उन्हे उपकार पहुँचाने का ज्ञान उन्हे भी रहता है बरन कुत्ते और घोड़े आदि कई एक पशुओ मे कृतज्ञता और स्वामि-भक्ति मनुष्यों से भी अधिक पाई जाती है तब मनुष्य और जानवर मे क्या अन्तर रहा।

इससे निश्चय होता है कि जन्म की सफलता का ज्ञान केवल समाज पर निर्भर है जिस काम को या जिस बात को समाज के लोग पसन्द करते हो और भला समझते हो उस ओर हमारी प्रवृत्ति का होना ही जीवन की सफलता है। जैसा इस गुलामी की हालत मे पढ-लिख सौ पचास की नौकरी पाय अपनी ज़िन्दगी दूसरे के आधीन कर देना ही जन्म की सफलता है सच है—

'सेवाविक्रीतकायानां स्वेच्छाविहरणं कुतः"

जिन्होने दूसरे की सेवा मे अपने को दूसरे के हाथ वेच डाला है उनका फिर आज़ादगी कहा? सैकड़ो वर्ष से गुलामी मे रहते पुश्तहा-पुश्त बीत गये स्वच्छन्दता या आज़ादगी की कदर हमारे मन से उठी गई। इस हीरे की परख के जौहरी इगलैड तथा यूरोप और अमेरिका के देशों मे पैदा होने लगे या अब इस समय जापान को इसकी कदर का ज्ञान होने लगा है हमारे यहा तो न जानिये वह कौन सा ज़माना था जब मनु महाराज लिख गये कि

"सर्वं परवश दुःख सर्वमात्मवश सुखम्"

सब कुछ जो अपने वश का है सुख है जो दूसरे के आधीन हैं वही दुःख है सुख दुःख का सर्वोत्तम लक्षण यही निश्चय किया गया है। सो

अब इस समय दस बीस की नौकरी भी ऐसी सोने की खेती हो रही है कि हमारे नव युवक इसके लिये तरस रहे हैं बड़े से बड़ा इमतिहान पास कर अर्ज़ी हाथ में लिये बगले-बगले मारे फिरते हैं और दुरदुराये जाते हैं। उसमे भी वर्तमान समय के कर्मचारियो की कुछ ऐसी पालिसी हो रही है कि सौ रुपये से ज़ियादह की नौकरी नेटिवों को न दी जाय—सेवा विक्रीत काया इस नौकरी मे भी वह समय अब दूर गया जब दो एक जुमले अगरेज़ी के लिखने और बोल लेने ही मात्र से सैकड़ो रुपये महीने की नौकरी सुलभ थी। सच है—

गतः स कालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म शुक्तिषु।
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामो ऽधुना वयम्॥

आज़ादगी के अनन्य भक्त कोई कोई नव युवक स्वच्छन्द जीवन (इ डिपेन्डेन्ट लाइफ) की धुन बाँधे हुये कोई आज़ाद पेशा किया चाहते हैं तो पास पूजी नही कि हौसिले के माफ़िक कुछ कर दिखावे। कपनी अथवा पणबन्धगोष्ठी की चाल अपने यहाँ न ठहरी कि उन्हे कहीं से सहारा मिलता। हमारा ऐसा सर्वस्व हरण होता जाता है कि न तो धन रहा न कोई जीविका बच रही कि ये लोग अपना हौसिला पूरा करते। जिनके पास रुपया है वे रुपयों के सूद के घाटे का परता पहले फैला लेंगे तो टेटा ढीला करेंगे। यों चाहे रुपया रक्खा रह जाय एक पैसा ब्याज न आवे पर रुपया कहीं लगाने के समय ब्याज का परता ज़रूर फैला लेंगे। जिन बेचारों ने हिम्मत बाँध कुछ रुपया कहने सुनने से लगाया भी तो पीछे उन्होंने ऐसा धचा खाया कि चित्त हो गये। उन्हे कोई ऐसा दियानतदार आदमी न मिला कि उनका उत्साह बढ़ता और मिल कर हम कोई काम करना नहीं जानते यह कलंक हम से दूर हटता। मा होती तो मोसी को कौन झीखता हम मिलना जानते होते तो वर्तमान दास्यभाव की दशा को क्यों पहूँचते। अस्तु,—

इस जीवन के सफलता के अनेक और दूसरे दूसरे उदाहरण हैं। गद्या को मिथ्या मानने वाले अहंब्रह्मास्मि की धुन बाँधे हुये स्वभाव

वादी जीवन की सफलता इसी मे मानते हैं कि हमें यह बोध हो जाय कि हमी ब्रह्म हैं और इस जगत् के सब काम आपसे आप होते जाते हैं कोई इसका प्रेरक नही है। पाप और पुण्य भला और बुरा दोनो एक से हैं—चित्त मे ऐसा पूरा पूरा भास हो जाय तो बस हम जीवन मुक्त हो गये अब हमे कुछ करना धरना न रहा सब ओर से अकर्मण्य हो बैठे। और आगे बढा तो मन को नाश कर डालो क्योंकि सब उत्साह और आगे की तरक्की करने का मूल कारण मन सो न रहेगा तो बुराई का काम चाहे न भी रुकै पर भलाई तो तुम से कभी हो होगी नही और यह सब भी तभी तक जब तक अपनी जरा भी किसी तरह की हानि नहीं है बस केवल जबानी जमाखर्च मात्र रहे आत्म त्याग के उसूल सो कही छू भी न जाँय कसौटी के समय चट्ट फिसल कर चारो खाने चित्त गिर पड़ा करो—ऐसा ही सेवक भक्त अपने प्रभु की सेवा मे लीन होना ही जीवन की सफलता मानता है। स्मरण कीर्तन, वन्दन, पाद सेवन, सख्य, आत्मनिवेदन आदि नवधा भक्ति के द्वारा जो अपने सेव्य प्रभु मे लीन हो गया वास्तव मे उसका जीवन सफल है। इस उत्तम कोटि के महात्मा अब इस समय बहुत कम जन्मते है अहं ब्रह्मास्मि कहने वाले धूर्त बचकों से तो यही भले। यद्यपि जिस बात की पुकार हमे है सो तो इस दासोस्मि मे भी नहीं पाई जाती फिर भी प्रेम और दृश्य जगत् सर्वथा निस्सार नहीं है न सर्व नाशकारी अकर्मण्यता ही का दखल इनमे है इससे ये बहुत अंशो मे सर्वथा सराहनीय है। चतुर सयाने चलते पुरज़े चालाक कहीं पर हों अपनी चलाकी से न चूकने ही को जन्म का साफल्य मानते हैं। किसी कवि ने ऐसों ही का चित्र नीचे के श्लोक मे बहुत अच्छा उतारा है—

आदौ भागः पंच धार्ष्ट्यस्य देयाः द्वौ विद्यायाः द्वौ मृषाभषाणस्य।
एकं भागं भण्डिमायं. प्रदेय पृथ्वी वश्यामेषयोगः करोति॥

पहला ५ हिस्सा धृष्टता का हो तब दो विद्या का दो झूठ बोलने का और एक हिस्सा भडौआ का भी होना ही चाहिये जिनमे ये सब

मिला के दस हिस्से हुनर के हैं वे इन सबों के योग से पृथ्वी भर को अपने काबू में ला सकते हैं। ससार मे इन्हीं का नाम चलता पुरजा है हम ऐसे गोबर गनेस बोदे लोगों का किया क्या हो सकता है जो निरे अपटु दस-पाच आदमियो को भी अपनी मूठी मे नही ला सकते। इसी से हम पहले अक में लिख आये ह कि हा! हम ऐसे हताश क्यो जन्मे? प्रयोजन यह कि जिसने झूठ सच बोल दूसरो को धोखा दे रुपया कमाना अच्छी तरह सीखा है वही सफल जन्मा हे।

सभ्य समाज के मुखिया हमारे बाबू लोगो में सफल जीवन का सूत्र साहब बनना हे जब तक कहीं पर किसी अश मे भी हम हिन्दुस्तानी हैं इसकी याद बनी रहेगी तब तक उनके सफल जीवन की त्रुटि दूर होने वाली नही। इससे वे सब-सब स्वाग लाते हैं क्या करें लाचार ह अपना चमड़ा गोरा नही कर सकते। अस्तु, ये कई एक नमूने सफल जीवन के दिखलाये इन सबों मे सफल जीवन किसी का भी नहीं है वरन सफल जीवन उसी पुरुष श्रेष्ठ का कहा जायगा जिसने अपने देश तथा अपने देश बान्धव के लिये कुछ कर दिखाया है जो आत्म सुख रत न हो खुदगरजी से दूर हटा है: इस तरह के उदार भाव का उन्मूलन हुये यहाँ बहुत दिन हुये। नई शिक्षा प्रणाली नये सिरे से हम लोगों मे पुनः उसका बीजारोपण सामयिक शासकों के नमूने पर किया चाहती है। कदाचित् कभी को यह बीज उगै फबकै और उसमें देशानुराग का अमृत फल फले और कोई ऐसे सुकृती भाग्यवान् पुरुष देश मे पैदा हो जो सुधास्यन्दी उसके पीयूष रस का स्वाद चखने का सौभाग्य प्राप्त करें पर हम तो अपने हतक जीवन में उसके स्वादु से वंचित ही रहेंगे।

मार्च १६०५

६—कर्तव्य परायणता

बड़े बड़े उत्कृष्ट गुण जिन से मनुष्य समाज में माननीय होता है जिनके अभाव से सब ठौर निरादर पाता और हेठा समझा जाता है—उनमें कर्तव्य परायणता का होना गुण सोपान की पहिली सीढी है। पहिली सीढी इसलिये इसे कहते हैं कि जब यही मालूम नही है कि हमे क्या करना उचित है और जिसके करने की जिम्मेदारी हम पर है त्रुटि या चूक होने से उसका हिसाब अन्तरात्मा को हमे देना होगा तब हम विद्वान् बड़े धर्मनिष्ट भी हुये तो क्या? कर्तव्य परायणता के कई एक अवान्तर भेद हम यहाँ नही लेते जिसमे जुदी-जुदी जाति के लोगो मे अलग-अलग मतभेद हैं। कितनी बातें ऐसी हैं जिन्हे हम हिन्दुस्तान के रहने वाले कर्तव्य मानते हैं पर इङ्गलैंड तथा योरोप के और और देश फ्रान्स जरमनी इत्यादि के लोग उसे अवश्य कर्तव्य न समझेगे। जैसा पुत्र के लिये बाप माँ की सेवा और अपनी स्व कमाई उनके अर्पण करना या अपने छोटे तथा असमर्थ भाइयो और कुटुम्ब को पालना पोखना यहाँ हिन्दुस्तान मे एक कर्तव्य कर्म है और न करने पर निन्दा है वैसा यूरोप के इङ्गलैंड फ्रान्स आदि देशो ने नही। अगरेज़ो मे बाप माँ की कुछ विशेष खबर न ले सर्वस्व अपनी मेम साहबा को सौप देना महा कर्तव्य परायणता है। यहाँ ऐसा करने से समाज मे निन्दा है। यहाँ कुलवती स्त्रियो के लिये बात-चीत और सलाप एक ओर रहे, घूँघुट के ओट से भी किसी पर पुरुष को देखना निन्दनीय है वरन सूर्य चन्द्रमा भी उन्हे न देख पावै यहाँ तक असूर्यपश्या होना कर्तव्य परायणता है जैसा किसी कवि ने कहा है—

"पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो।
निजावासादन्यद्भवमपरद्वीपगमनम् ॥

वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः।
पुमानन्य कान्ताद्विधुरिव चतुर्थी समुदितः॥

कुलवती स्त्रियों का घर से बाहर पाँव काढ़ना वैसा ही है जैसा साँप के फन पर पाँव रखना, अपने घर से किसी दूसरे के घर कभी जाना तो मानो द्वीपान्तर मे जाना है; उनके मुँह की बोल दूसरे के कान को सुनने के लिये वैसा ही अप्राप्य है जैसा सूम का धन दूसरे को नहीं मिल सकता। उनका किसी परपुरुष की ओर निहारना वैसा ही है जैसा भादो के चौथ के चाँद का देखना। और भी रस मंजरी मे स्वकीया का उदाहरण इस भाँति कुलवती स्त्रियों के वर्ताव के सम्बन्ध मे दिखाया है—

"गतागतकुतूहलं नयनयोरपांगावधि स्मितं
कुलनतभ्रु्व मधर एव विश्राम्यति।
वच. प्रियतमश्रुतेरतिथिरेवकोपक्रमः
क्व चिद्यदिचेत्तदा मनसि केवलं मज्जति"॥

नेत्र के कटाक्षो का इधर उधर चलाना आँख के कानो ही तक मं: कुलवधू जनों का हँसना होठों के फरकने ही तक उनके बचन केवल प्राणनाथ अपने पति के कानों ही तक; नये आये हुए पाहुने की भाँति क्रोध यदि कभी आया भी तो मन ही मन मसोस कर रह गई। व्यय मे मुक्त हस्त न हो घर के काम काज तथा शिशु पालन मे प्रवीणता आदि उत्तम गुणों की खान हिन्दू ललनाओं का अखण्ड पुण्य और उनका पवित्र चरित्र ही भारत को इस गिरी दशा में भी करावलम्ब देते सर्वथा अधःपात से इसे बचा रहा है। जिनके चरित्र पालन की प्रशंसा में किसी कवि ने ऐसा भी कहा है—

"अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जान्हवी"

यह साध्वी हमारे में आय स्नान कर हमें पवित्र करे ऐसा जगत् पावनी जान्हवी गंगा भी चाहा करती है।

यूरोप देश निवासियो को इसमे कुछ भी कर्तव्य परायणता नहीं समझी गई। यहाँ लौ सभ्यता जोर किये हुये है कि किसी की मेम साहबा को कोई बग्घी पर चढाये दिन भर घूमते और सैल सपाटा करते रहे कोई क्षति नही। अस्तु, इस तरह की एक एक जाति की अलग अलग कर्तव्य परायणता को जुदे-जुदे देशो की जुदी जुदी रिवाज और अपने अपने समाज के भिन्न-भिन्न क्रम या दस्तूर मान हम उसे कर्तव्य परायणता न कहेंगे बल्कि कर्तव्य परायणता उसे कहेगे कि जिसके न करने मे प्रत्यवाय अथवा प्रायश्चित है जैसा ब्राह्मण के लिए सूर्योदय के समय सन्ध्योपासना कर्तव्य कर्म है और उसके न करने मे प्रत्यवाय है।

कर्तव्य पर ध्यान और समय का उचित अनुवर्तन (पक्चुअलटी) दोनों का साथ है। सच पूछो तो हम इन दोनो से च्युत हो गये हैं जो अपने समय को ठीक रखना या पालन करना जानता है अपने वक़्त को बेजा न खोता वही कर्तव्य परायण भी भरपूर रह सकता है और ये दोनो इस समय हमारे शासनकर्ता मे अच्छी तरह पाये जाते हैं। जब हम इन्हे अपना शिक्षा गुरु अनेक सामयिक सभ्यता की बातो मे मान रहे हैं और उन्हे अपना गुरुर्गुरु समझ उनका अनुकरण कर रहे हैं तो इन दोनो में भी उनके अनुयायी क्यों नही? किन्तु यह भी कुछ देश के भाग्य ही कहेगे कि यहाँ के लोग बुराई का अनुकरण पहले और बहुत जल्द करने लगते हैं भलाई को भुलाय उस ओर कभी झुकते ही नही। जित जेता का अनुकरण करते हैं यह प्राकृतिक नियम की भाँति हो रहा है और यह कुछ यही नही वरन् सब देश और सब जाति के लोगों मे देखा गया है।

जब से मुसलमान यहाँ के जेता हुए उस समय से हम उनकी चाल ढाल नशिस्त बरखास्त के कायदे न केवल उनकी अरबी फारसी तथा उर्दू भाषा वरन् दीन इसलाम को अब तक अपनियाते आये आर्य से अर्द्ध यवन हो गये; यहाँ लौ कि मुसलमानो को अपना एक अग बना

लिया अब पचास साठ वर्ष से हिन्दू मुसलमान दोनो अपने नये जेता का अनुकरण कर रहे हैं, किन्तु उनमें जो कुछ त्रुटि है केवल उसी का उनमें भलाई क्या है उसका नहीं। उनका सा अध्यवसाय धुन बाँध के किसी काम को करना विघ्न पर विघ्न होता रहे पर जिसे आरम्भ किया उसे करी के तब छोड़ना; स्वजाति पक्षपात, विद्याभ्यास: ऐक्य; साहस, धैर्य; वीरता: विचार की दृढता आदि उनके अनेक गुणों की ओर कभी ध्यान नहीं देते उनकी सी भोग लिप्सा पान दोष इत्यादि को अलबत्ता अपना करते जाते हैं।

यावत् कर्त्तव्यों मे वर्तमान गिरी दशा से अपना उद्धार महा कर्तव्य परायणता है किन्तु इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता प्रत्युत उसी को कर्तव्य मान रहे हैं जिसमे हमारा अधिक बिगाड़ हे और गतानुगतिक न्याय के अनुसार भेड़िया धसान के समान आँख मूँद उधर ही को बराबर चले जाते हैं। संधिया और हुलकर के पूर्व पुरुष इसी कर्त्तव्य परायणता के बदौलत इस उत्तम पद पर कर ढिये गये· ये दोनों पेशवा के घर के सेवक थे। इतिहासो मे कितने इसके उत्तम उदाहरण पाये जा सकते हैं इस समय भी यद्यपि देश बड़ी गिरी दशा में आ गया है पर ढूँढ़ने से बहुत से अच्छे उदाहरण मिल जायँगे। जिनमे कर्तव्य परायणता होगी उनमें समय का सदनुष्ठान (पंक्चुअलिटी) भी अवश्य होगी, दोनों उत्तम गुणों का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है, बिना एक के दूसरा कभी रह नहीं सकता। देश के कल्याण के लिए इन दोनो का उस देश के निवासियों मे आना स्वाभाविक गुण होना चाहिये। ईश्वर प्रसन्न हो कर हम लोगों मे कर्तव्य परायणता स्वाभाविक गुण पैदा कर दे तो देश का उत्थान सहज मे हो जाय। सर्वसाधारण की दशा के परिवर्तन की यह पहली सीढ़ी अवश्य कही जायगी और सीढ़ी सीढ़ी चढते जायँ तो कदाचित् एक दिन शिखर पर भी चढ बैठें तो अचरज क्या।

जून १६०६

१०—तेजस्विता या प्रभुशक्ति

सोत्साहस्य हि लोकेषु नकिंचिदपि दुष्करम् ॥

ऊपर का वाक्य आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का है। "तेजीयान् उत्साह युक्त के लिये संसार मे ऐसी कोई बात नही है जिसे वह न कर डाले" सच है जिसका जी नही बुझा हिम्मत बाँधे है उसको बड़े से बड़ा काम कठिन नही मालूम होता। हमारी आर्य जाति बार बार पराजित होते होते गर्दखार हो गई बल, वीर्य उत्साह, सत्व, पौरुष, अध्यवसाय, हिम्मत सब खो बैठी जो सब गुण मनुष्य मे तेजस्विता के प्रधान प्रधान अग है। अग और अगी का परस्पर सम्बन्ध रहता है जब अंग न रहे तो अगी के होने की क्या आशा की जा सकती है-और अब तो प्रभुत्व शक्ति का सर्वथा अभाव दिखाई देता है। हिन्दुस्तान के लोग फर्माबरदारी तावेदारी इतात मे ससार की सब जाति मे अगुआ गिने जा सकते हैं सो क्यों? इसीलिये कि इनमे से अपनापन सब भाँत जाता रहा वह आग बिलकुल बुझ गई जिससे इनमे तेजस्विता आती जो आग और जाति के लोगों मे दधकती हुई पूर्ण प्रज्वलित हो रही है। शिक्षा और सभ्यता का सचार, उन उन तेजस्वी जाति वाले विदेशियों का घनिष्ट सम्बन्ध, उनका उदाहरण इत्यादि सैकड़ों यत्न और चेष्टा उसके पुनः सचार की सब व्यर्थ होती हैं।

तेजस्विता प्रभुत्व शक्ति की कारण तो हई है वरन अपने मे बड़प्पन या बुज़ुरगी आने की बुनियाद है। प्रभु शक्ति सपन्न तेजीयान् कैसी ही कठिनाई मे आ पड़े अपने दृढ अध्यवसाय, स्थिर निश्चय, पौरुषेय गुण के द्वारा उस कठिनाई के पार हो जाने की कोई रास्ता अपने लिये निकाली लेता है। वह साहसी उससे अधिक कर सकता है जितनी उसमे उस काम के करने की (जेन्स) स्वाभाविक शक्ति दी गई

है। वरन स्वाभाविक शक्ति के बल करने वाले को जितना नैराश्य, भय हेतु, और शंका स्थान रहता है उसका आधा भी तेजीयान् प्रभुत्व शक्ति संपन्न को न होगा। और यह प्रभुत्व शक्ति चारित्र्य (करेक्टर) का तो केन्द्र भाग है जिसके चरित्र में स्खलन है वह क्या दूसरों पर अपनी प्रभुता या रोब जमा सकता है? तेजः पुंज की वृद्धि केवल वीर्य रक्षा आदि चरित्र की सपत्ति ही से सुकर है, तो निश्चय हुआ कि पहले हम अपने को सुधारे रहैं तो दूसरों को सुधरने के लिये प्रभु बनैः नही तो किस मुख से औरो को हम कह सकते हैं—'खुद फजीहत दीगरे देह नसीहत।"

बल्कि यों कहिये वही तो पुरुष है जिसमे तेज है। यह सतेजस्कता हमारे हर एक काम मे ऐसा ही सहायक है जैसा रक्त संवाहिनी शिरा या धमनी शरीर मे जीव की साक्षिणी रह जीवन मे सहायक होती है। नाड़ी छुट जाने पर मरने मे देर नहीं लगती, अच्छा वैद्य रसों का प्रयोग कर फिर उसे जगाता है। हम को अपने कामो में सच्ची उम्मेद उसी से रखना उचित है जिसमे तबियत मे ज़ोर पैदा करने वाला यह गुण विद्यमान् है बल्कि मनुष्य के जीवन रूप कुसुम की मन हरने वाली सुबास यही है। धिक् कातर दुर्बलचित्त को—स्थिर अध्यवसाय दृढ़ चित्तताही बड़ी बरकत या कल्याण का मार्ग है। दुर्बल और प्रबल, बड़े और छोटे, जित और जेता, निर्धन और अढ्य मे अन्तर बताने वाली यही प्रभु शक्ति सपन्न सतेजस्कता या तबियत में जोर का होना है। बिना जिसके असीम बुद्धि वैभव अथाह विद्या और सब तरह का सुबीता के रहते भी आदमी दो टाँग वाला जानवर है। तेजीयान् ज़ोर रखने वाला यदि उद्देश्य उसका सर्वथा उत्तम और सराहना के योग्य है तो वह जिस बड़े काम के लिये उतारू होगा करी डालेगा। यहाँ की अदालतों मे हिन्दी अक्षरों के प्रचार पाने के उद्योग पर हम अपने मित्रवर मालवीय को सदा हँसते थे और यही समझते थे कि यह सब इनकी बढ़ती।

उमर की उमंग मात्र है। किन्तु स्थिर अध्यवसाय के साथ तबियत मे ज़ोर का होना इसी को कहेगे कि हमारे मित्रवर इस अपने उत्तम (नोबिल) उद्देश्य मे कृतकार्य हुये ही तो। मनुष्य चाहे बडा बुद्धिमान् न हो पर अध्यवसाय और रगड करने मे थकैगा नहीं ता वह अवश्य कृतकार्य होगा, और ऐसे काम जिसे काम कहेंगे जो बहुत से लोगों के नफा नुकसान का है बिना रगड़ के कभी सिद्ध भी नही हुये। तबियत मे जोर रख रगड़ करने वाला जितना ही कठिनाई और विघ्नों के साथ लड़ता रहेगा उतना ही उसका नाम होगा और यत्नशीलों मे अगुआ माना जायगा। कहा भी है—

"न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
साहसं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥"

वह साहसी अपने निरन्तर अभ्यास, प्रयत्न और परिश्रम के द्वारा असभावित को सभावित कर दिखा देगा। जिनमे ज़ार नही बुझे दिल के हैं सदा सशयालू हो शक मे पड़े रहते हैं, उनको तो छोटी छोटी बात भी जो संभावित है सदा असभावित रहती है। यूरोप के नये नये दार्शनिक (फ्रीविल) मनुष्य अपने काम मे स्वच्छन्द है इस बात पर बड़ा ज़ोर देते हैं इसमे सन्देह नही आदमी जल मे पडे हुये तिनके या घास फूस के सदृश नही है कि जल का प्रवाह उसे जिधर चाहे उधर ले जाय किन्तु यदि यह दृढता के साथ अपने मे अच्छे पैराकू तैरने वाले की ताकत रखता है और विघ्नो के झकोर से नही हटता तो अन्त को कामयाब होता ही है। जब तक हम जीते हैं हमारा चित्त प्रति क्षण हम से यही कह रहा है कि तुम अपने काम के आप जिम्मेदार हो। ससार के अनेक प्रलोभन और अभ्यास तथा आदते उसे अपनी ओर नहीं झुका सकते, प्रलोभित हो उधर झुक जाना केवल हमारी कंचाहट है। इससे जो अपने सिद्धान्तों के दृढ हैं वही मनुष्य हैं उनके पौरुषेय गुण के आगे कुछ असाध्य नहीं है।

———

सितम्बर १९००

११—भक्ति

भक्ति यह शब्द भज धातु से बना है जिसके अर्थ हे सेवा करना। सेवा से प्रयोजन यहाँ वैसी सेवा का नही है जैसा नौकर अपने मालिक की सेवा कोई निश्चित वेतन प्रति मास या प्रति वर्ष ले करता है किन्तु उस तरह की सेवा जिसे सेवक प्रेम और विश्वास के उद्गार से पूरित हो अपनी सेवा का बिना कुछ बदला चुकाये या वेतन इत्यादि की इच्छा बिना रख के करे। यद्यपि भक्ति, श्रद्धा, रुचि, लौ, लगन प्यार, इश्क आदि कई शब्द एक ही अर्थ के बोधक है किन्तु भक्ति का दरजा सब से बढ कर है। भक्ति से जो भाव हृदयगम होता है अर्थात् भक्त को अपने सेव्य या प्रभु पर जिसकी भक्ति भावना मे वह लगा है जैसा भाव मन मे उदय होता है वैसा श्रद्धा आदि शब्दो से नही होता। इसका स्वाद ही निराला है यह मानो गूंगे का लड्डू है। जो कुछ आनन्द और सन्तोष तथा शान्ति चित्त मे आय जगह कर लेती है उसका केवल अनुभव मात्र चित्त को होता है जिह्वा द्वारा उसका प्रकाश हो ही नही सकता। इसलिये कि मन जिसको अनुभव होता है उसको बोलने की ताकत नहीं है और मुख जिसके द्वारा शब्द गढे जाते है उसको अनुभव करने की सामर्थ्य नही है। यद्यपि भय या लोभ आदि कारणों से भी भक्ति या श्रद्धा आ जाती है पर हमारा मतलब यहाँ उस तरह की भक्ति से नहीं है। सच्ची भक्ति वही है जो निस्स्वार्थ हो और यह पवित्र भाव या अनुराग वही ठहर सक्ता है जहाँ स्वार्थ की गन्ध भी न हो। आपे को बिलकुल मिटाय कायिक, मानसिक, वाचिक, जितनी चेष्टा हैं सब उसी अपने प्रभु के लिये की जाँय जिसकी वह भक्ति करता है और इसी कायिक, मानसिक, वाचिक आदि भांति-भांति की जुदी-जुदी चेष्टाओं को ९ हिस्सों में बांट शांडिल्य आदि हमारे

पुराने आचार्यों ने नवधा भक्ति नाम रक्खा – जिसका प्रादुर्भाव या जिसकी फिलासोफी केवल हिन्दुस्तान ही में दर्शन के आकार में परिणत हुई। और शांडिल्य के उपरान्त फिर महाप्रभु वल्लभाचार्य ही को सूझी। शांडिल्य ने जो कुछ निरे ख्याल (थ्योरी) में रक्खा उसको वल्लभाचार्य ने प्रेक्टिकल करके दिखला दिया, कर्म योग कैसा होना चाहिये उसका रूप खड़ा कर दिया और उसके आधार वाल भाव में भगवान् कृष्णचन्द्र को बनाया।

अकुटिल भाव, सरल चित्त, जी की सिधाई, की परीक्षा का निष्-शापल कसोटी जैसा यह भक्ति है वैसी कोई वस्तु संसार में नहीं है। इस तरह के हमारे सच्चे भक्तो पर मूर्खता का दोष आरोपित किया जाता है खास कर इस समय जब शिक्षा का प्रवाह हमारे देश में वह निकला है, पढ़े लिखे लोग ऐसों को हँसते हैं उन्हे दिल्लगी में उड़ाते हैं पर अकुटिल चित्त हमारे भक्त जन उनकी ठठोली का कुछ भी ख्याल न कर प्रेम और अनुराग में डूबे हुये संसार के यावत् वाह्य प्रपञ्च को लात मारते हैं। सूरदास की काली कमली चढ़ै न दूजा रंग —देश या जाति का नवाभ्युत्थान या अधःपतन सायेन्स की नई नई इजादो से अनेक तरक्कियाँ होती रहैं उनको इसमे कुछ सरोकार नही। हिन्दुस्तान क्यो हीन दीन हो डूबता जाता है इसका भी उन्हे कोई शोक सन्ताप नही। विदेशियो के बताये मार्ग पर चलने से हमारी तरक्की हैं कौमीयत का दावा वाँधने में हम भी अग्रसर हो सकेंगे इसका कुछ हर्ष नहीं। अपने सेव्य प्रभु की अविच्छिन्न सेवा में अन्तर न हो या तत्सामीप्य वियोग जनित क्लेश न हो यही उनका मुख्य उद्देश्य है। जैसा कुंभन दास का दिन भर का वियोग कई वर्ष हो गये थे जो अष्टछाप के वैष्णवों के इन पद से प्रगट है 'कितिक दिन होइ जो गये बिनु देखे – तरुण किशोर श्याम नन्द नन्दन कछुक अवत मुह रेखे' इत्यादि॥

हरि भक्ति, देव भक्ति, गुरु भक्ति, पितृ भक्ति, मातृ भक्ति, राज

भक्ति, देश भक्ति आदि भक्तियों के अनेक भेद हैं। दैव का कुछ ऐसा कोप है कि इस अन्तिम भक्ति देश की भक्ति का काल यहाँ बहुत दिनों से छा रहा है। इन सब प्रकार की भक्तियों मे हमारी ऊपर लिखी भक्ति की अवतरणिका सबो के साथ पढने वाले लगा सकते हैं। इस भक्ति के प्रकरण मे एक नये तर्ज़ की भक्ति और भी है जिससे हमारे बहुत से पढने वाले पूर्ण परिचित होंगे इससे उसका लक्षण या उसके विशेष वर्णन की बहुत आवश्यकता नही मालूम होती और उसका नाम भार्या भक्ति है—मन वच कर्म सर्वतोभावेन अर्द्धांगिनी मे दास्य भाव इसका सारांश है। माता पिता कुनबा गोत सब से मुह मोड़ अनन्य भाव से पत्नी देवी की आराधना ही इस महाव्रत का साफल्य है। फल जिसका किसी कवि ने यों लिखा है—

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम्।
यो गृहेष्वेव निद्राति दरिद्राति स दुर्मतिः॥

जून १८९१

१२—सुख क्या है ?

सुख के सम्बन्ध मे आधुनिक वेदान्तियो का तो सिद्धान्त ही निराला है जिन्होने व्यास कृत प्राचीन वेदान्त दर्शन के जो कुछ उत्तम सिद्धान्त थे कि सुख दुख मे एकसा रहना सुख मे फूल न उठना दुख मे घबड़ाय नहीं सो न कर छिपे नास्तिक ये वेदान्ती अब मानते हैं कि सुख दुख पाप पुण्य बुरा भला दोनो एक हें और दोनो बड़े बन्धन हैं। पाप पुण्य दोनो शरीर करता है आत्मा शुद्ध और निर्लेप है, इत्यादि। खैर वेदान्तियों के ये कच्चे सिद्धान्तो को अलग रख हम यहाँ पर आज विचार किया चाहते हैं कि सुख क्या है ? लोग कहते हैं इने पर भगवान की कृपा है ये बड़े सुखी हैं। पर इसका कोई ठीक निश्चय अब तक न हुआ कि सुख क्या वस्तु है जिसके लिये संसार भर ललचा रहा है। कोई बड़े परवारी और बढे हुये कुनबे को सुख की सीमा मानते हैं। कच्चे-बच्चे लडके बालों से घर भरा हो एक इधर रोता है दूसरा उधर पडा चिल्ला रहा है सब ओर किच-पिच गुल-शोर मच रहा है एक बाबा की डाढी खसोटता है दूसरा कान मीजता है तीसरा गोद मे चढा बैठा है चौथा सामने पड़ा मचला रहा है बाबा बेवकूफ मनीमन फुटेहरा से मगन होते जाते हैं और अपने बराबर भाग्यमान और धन्य किसी को नहीं मानते। कोई-कोई इसी को बड़ा सुख मानते हैं कि अनगिन्ती रुपया पास हो उलट पुलट बार-बार उसे गिना करैं न खायें न खरचै साँप बने बैठे-बैठे ताकते रहैं। जैसे हो तैसे जमा जुड़ती रहै बात जाय पत जाय लोक मे निन्दा हो कोई कितना ही भला बुरा कहे पर गाँठ का पैसा न जाय। तुम उसके रुपये या फाइदे मे खलल अन्देज़ न हुये हो चाहो तुम्हारा सा बदकार कमबख्त अपाहिज दूसरा दुनिया के परदे मे न पैदा हुआ हो तुम उसके लिये सिर की

कलगी होंगे। वही आप ससार के समस्त गुणियों में अग्रगण्य हो अपने सुयश की महक से महर-महर करते सुचाल और सद्वृत्त की कसौटी में कसे हुए हों पर उस खूसट स्वार्थ लंपट से रुपये में अपना उचित हक़ समझ खलल अन्देज़ हुये बस आपसा नालायक और बुरा दूसरा कोई उसकी निगाह मे न जचैगा। उसके सामने आप का नाम किसी की जबान पर आ जाय ता गालियों के सहस्रनाम का पाठ प्रारंभ कर देगा। न सिर्फ आप को वरन आप जिनके बीच में चलते फिरते है जो तुम्हे सद्वृत्त समझ तुम्हारी कदर करते हैं उनके लिये भी उसी सहस्रनाम का पाठ तैयार है। किसी की समझ में हुकूमत बड़ा सुख है अपनी हुकूमत के ज़ोर में गरीब दुखियाओं को पीस उनका लहू सुखाय-सुखाय न्याय हो चाहो अन्याय अपना सुख और अपने फाइदे में जरा भी कसर न पड़े इत्यादि इस कबखत के लिये सब सुख हैं।

किसी-किसी का मत है कि शरीर का नीरोग रहना ही सुख सन्दोह का उद्गार है इसी मूल पर यह कहावत चल पड़ी है "एक तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामत"। ये सब सुख ऐसे हैं जो देर तक रह सकते हैं और जिनके लिये हम हज़ार-हज़ार तदबीरे और फिक्र किया करते है फिर भी ये सब तभी होते हैं जब पुर्बिले की कोई अच्छी कमाई हो। और अपने किये नहीं होता जब तक उस बड़े मालिक को मंजूर न हो। अब कुछ थोड़े मे क्षुद्र सुखों को यहां पर गिनाते हैं और उन सुखों के भोक्ता किस प्रकार के होते हैं उसे भी उसी के साथ बनाते चलेंगे। जैसा शहर के बदमाश और शोहदों का सुख नरम तथा राशी हाकिमो के होने से है। बनियों को महादुर्भिक्ष परम सुख है, हत्यारों का अन्न खरीदे हुये हैं नित्य पनसेरी लुढ़काते-लुढ़काते यह दिन आया कि अन्न ढूँढे नहीं मिलता सेठ जी साहब की गज भर की छाती है मुनाफे का गॅजियो रुपया डकार बैठे। दलालों का सुख आँख का अन्धा गाँठ का पूरा मिल जाने में है। कलहा कर्कशा का सुख

लड़ने और दाँत किरने में हैं। परद्रोही ईर्षी को दूसरे के नुकसान में है, इत्यादि भिन्न-भिन्न रुचिवालों को जुदे-जुदे अन्दाज़ के सुख हैं। सच है " भिन्नरुचिर्हिलोकः " कभी-कभी हमें सुख के भाव को लोगों पर गट होने से रोकना पड़ता है। हमारा एक परोसी सैदीवाल मर गया जी से तो इतना खुश हुये मानो कारूँ का खज़ाना हाथ लगा पर लोक लाज भरने को चार भाइयों के बीच अपने सुख के भाव को छिपाने को उस मरे हुये के नाम पछताना पड़ता है। "क्या कहें कूँच कर गये वहुत अच्छे थे भाई मौत से किसका बश है ऐसे ही मौके पर तो आदमी सब तरह विवश हो जाता है।

सच पूछिये तो चित्त में सुख का भाव पैदा होने की बुनियाद कुछ नहीं है केवल प्राप्य वस्तु के अभाव का मिट जाना ही सुख है। ईश्वर करे सुख में रह कर पीछे से दुखी किसी को न होना पड़े ऐसे को दुखी जीवन से मर जाना उत्तम है।

सुखहि दु.खान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखेन यो जाति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः सजीवति ॥

जैसा घने अन्धेरे में चले जाते हुये को एकाएक दीपक का उजेला मिल जाय उसी तरह दुःख भोग तब सुख में आजाना शोभा देता है जो मनुष्य सुख में रह तब दरिद्र हो जाता है वह मानो शरीर धारण किये श्वास ले रहा है पर वास्तव में मरा हुआ है। दुःखैक मात्र सार इस ससार में सुख से जीवन काटने को बहुतों का सुख चाहना पड़ता है। नौकर को अपने मालिक का सुख, रियाया को अपने हाकिम की खुशी। शागिर्द को उस्ताद की खुशी। माँ बाप को अपने लड़के वालों का सुख। आशिक तन को अपने दिलदार यार का सुख। शहर के रईसो को मेजिष्ट्रेट साहब की खुशनूदी। मातहत क्लर्कों का सर दफ़्तर की खुशी। हमको अपने पढने वालो की प्रसन्नता आपेक्षित है। किसी रसीले चुटीले मजमून पर पढने वालों के दाँत निकल पड़े

हमारा परिश्रम सफल हो गया। साध्वी सच्चरित्र स्त्रियों का सुख पति के सुख मे है। पादरी साहब की प्रसन्नता जगत भर को क्रिस्तान कर डालने मे है। सच्चे देशहितैषियो को देश की भलाई मे सुख है। इत्यादि, सुख को सब लोग कोने अँतरे सब ठौर ढूँढते फिरते हैं किन्तु उसके पाने मे कृत कार्य हज़ार मे लाख में कही एकही दो होते हैं।

अगस्त १८९६

———

१३—संसार सुख का सार है हम इसे दुःख का आगार कर रहे हैं

ससार सुखका सार और स्वार्थ तथा परमार्थ साधन का पवित्र मन्दिर है पर हम इसे अपने कुलक्षणों से दुःख के प्रवाह का श्रोत यावत् सन्ताप और क्लेश का अपवित्र आलय कर रहे हे। पौरुषेय गुण शून्य हम अपने अकर्मण्य वेदान्तियो को क्या कहैं जो ससार को दुःख-रूप मिथ्या और नश्वर मानते हैं, यह प्रत्यक्ष है कि यह हमारे ही अविचार अविवेक अशान्ति असन्तोष मोहान्ध बुद्धि आदि दुर्गुणों का कारण है कि स्वर्ण मन्दिर ससार को हम ढहाय के उजाड़ खडहर कर रहे हे। जहाँ अमृत का कुण्ड भरा है उसे हम हालाहल विप से भरे देते हैं। बड़े विद्वान हुये यावज्जीव शास्त्र और फिलॉसोफी को रट रट पचमरे, जितना रट डाला उसके एक वाक्य पर भी जो विवेक और विचार को काम मे लाते तो अपने अस्तव्यस्त कामो से जो अनेक दुःख सहते हे और अपनी समझ और काम को दोष न दे ससार को दुःख का आगार मान बैठे हैं यह भ्रम मिटजाता। यदि विवेक और विचार को मन मे जगह देते तो जो दुःखमय बोध होता है वही अनन्त सुख का हेतु होता,

"हाथ कंगन को आरसी क्या ?"

जिस काम को हम विचार और विवेक पूर्वक करते हैं उसमें पूरे कृतकार्य होते हैं और दैवात् कभी न भी कृतकार्य हुये तो पीछे से पछताव नही रह जाता। यही बात असन्तोष मे पाई जाती है हज़ार कमाया लाख कमाया सन्तोष नही होता रात दिन चिन्ता मे व्यग्र रहते हे रात को नींद नही आती, दिन मे खान पान नही

सोहाता। रुपये के मुकाबिले बेटे को बाप से न बाप को बेटे से कोई मुहब्बत है, स्त्री जो अपनी अर्द्धांगिनी है उससे भी प्रेम नही है तो भाई-बन्धु, गोती नाती, लोग कुटुम्ब कहाँ रहे? मनुष्य जन्म की सफलता और यावत् सुख का साराश उन्हें तभी मालूम पड़ता है जिस समय रुपयों की गॅजिया खोल गिनने लगते हैं। तोले दो तोले बालाई पचा लेना जिनके लिये कठिन काम है जिसका सेर दो सेर का वज़न हम ऐसे भुक्खडों की क्षुधासागर के किस कोने मे समा गया कुछ मालूम भी नहीं पड़ता, दस की हुण्डी बावन मिती की कल भुगतान देने को है २५ फलाने असामी के नीचे दबा है मियाद बीतती है असामी दिवालिया हो रहा है कल ही नालिश नहीं करते तो रकम डूबती है रात की नींद दिन की भूख गवाँय बैठे। अहर्निश चिन्ता के सागर मे डूबे हैं नीयत दुरुस्त नहीं कोई की कैसी रकम हो निगल बैठने के लिये बहाना ढूँढ रहे हैं। यही करते करते एक दिन मुहबाय रह गये सुख क्या वस्तु है न जाना। वही तीन गडे रोज़ का मज़दूर दिन भर मेहनत के उपरान्त रूखा सूखा अन्न खाय टाँग पसार रात को सुख से सोता है चिन्ता और फिकिर किसका नाम है जानताही नहीं। सच है:—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति स्वगृहे।
अनृणी चाप्रवासी च सवारिचर मोदते॥

अस्तु, इस तरह बड़ी कृपणता और कदर्यता से रुपया जोड़ सिधार गये। सन्तान उनकी ऐसी कुल कुठार जन्मी कि वष हो दो वर्ष में तमाशबीनी, शराब ख्वारी आदि अनेक दुर्गुणों मे फूँक ताया, यही सब सोच समझ किसी ने लिखा है:—

"आये दुःखं व्यये दुःखं कथमर्थाः सुखावहा"

जिसकी आमदनी मे दुःख जिसके खर्च हो जाने मे दुःख तो धन सुख पहुंचाने वाला क्योंकर हो सकता है। आवेश मे आय लिख ता

डाला पर इतना न सोचा कि विवेक पूर्वक धन का आय तथा व्यय हो तो कहाँ दुःख रह जाय ? कोई ऐसे हैं कि औलाद के लिये तरस रहे हैं न जानिये कितनो मान मनौती माने हुये हैं, पूजा-पाठ, जप-तप सब कर थके। पुत्र का मुख न देखा, धन-धान्य राज-पाट जिसके बिना फीका मालूम होता है जीवन व्यर्थ मानते है। कोई ऐसे है कि औलाद से घर भरा है जिसकी यहाँ तक कसरत है कि ऊबे हुये हैं ज़िन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं। आँवा का आँवा गन्दा हो गया एक भी ऐसे न हुये कि इस बुड्ढे को सुख पहुँचाते एक एक दिन भारी हो रहा है। सबेरे से उठ इसी फिक्रि मे लगता है कहाँ से लावै कि इन्हे पालें। ७० वर्ष का हुआ पर आराम और सुख उसके लिये सपने के ख्याल हो गये। कुटुम्ब पालन के बोझ से पिसा बार बार कौंखता है, खिजलाता है, समय को दोष देता है, ससार का नरक का भोग मानता है पर अपनी भूल को एक बार नहीं सोचता कि सृष्टि पैदा तो कर दिया और उसको किसी ढग की करने का कभी ख्याल न किया, अपने आप अपना भरण पोषण की योग्यता उनमे बिना पैदा किये व्याह कर घर बसाता गया। बे-समझी का कुसूर तो तुमने किया दण्ड अब उसका दूसरा कौन भुगतै ? कुआँ की भाँग है किससे कहै देश का देश इस बुराई मे पड़ा झख रहा है पर किसी के मन मे यह नही आता कि यह महा कुरीति है इसे छोड़ दे। अपनी भूल को नही पछताते ससार को अथाह दुःख का सागर और अपने को उसमे डूबे हुये मानते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छहो के चक्कर मे पड़े हुये हम तुम सब ने अनेकानेक क्लेश झेलते हुये संसार को दुःखमय तो निश्चित कर रक्खा है किन्तु अपनी ओर एक बार नहीं देखते कि यह सब हमारा ही कुसूर है। हम जो अपने को सुधार डालें तो यह ससार जो ज़हर सा कडुआ बोध होता है दाख रस सा मधुर हो जाय। क्या समाजनीति क्या धर्मनीति क्या राजनीति जिधर देखो उधर हमारी ही बड़ी भारी त्रुटि पाई जाती है: जिससे हमारा समाज, हमारा धर्म, हमारे

निकाल दे जैसा ब्राह्मण-मात्र का सह-भोजन होने लगे ऐसा ही क्षत्री और वैश्यो का भी। कच्ची तथा पक्की चाहे किसी जाति का ब्राह्मण हो भोजन कर लेने मे कभी आगा पीछा न करै। दक्षिणी ब्राह्मणो मे जैसा प्रचलित है कि महाराष्ट्र तैलग, द्राविड़ सब एक साथ भोजन करते हैं। हमारे यहाँ आठ कनौजिये नौ चूल्हे प्रसिद्ध हैं जो केवल दभ और ईर्षा की बुनियाद पर हैं, धर्म का कही लेश इसमे नही है। धर्म-शास्त्र के अनेक ग्रन्थ ढूंढ़ डारे कच्ची पक्की तथा सखरी निखरी के भेद मे क्या मूल है कोई एक वचन भी इस तरह का न मिला। सखरी निखरी की प्रथा निरी आधुनिक और निर्मूल है समाज को नित्य नित्य नीचे गिराने को महा दाम्भिक अदूरदर्शी ईर्ष्यालु स्वार्थी लोगों की चलाई हुई है, जिससे लाभ कोई नहीं है आपस की ईर्ष्या द्रोह अलबत्ता बढ़ जाती है और एक एक समाज के इतने टुकड़े हो गये हैं कि हिन्दुओ म जातीयता "नेशनालिटी" कभी आवेहीगी नही। यह तो हम जानते हैं कि आपके चित्त मे हमारे इस लेख का कुछ असर न होगा क्योंकि जो जागता है उसको जगाने से क्या? आप स्वय सब जाने बैठे हैं तब हम आपको क्या चितावै किन्तु हाँ ससार को आप दुःख रूप मान बैठे हैं तो अब अपने सिद्धान्त को नहीं बदला चाहते। खान-पान के व्यर्थ के तितिम्बे को कम करने मे कितना आराम और सुख है सब लोग इसे स्वीकार करेंगे किन्तु इतना साहस और इतनी हिम्मत किसी मे नहीं है कि अग्रसर हो इसे करके दिखावे और दूसरों के लिए उदाहरण हो।

अँगरेज़ी तालीम के ज़माने मे आपकी ऐसी ऐसी बेबुनियादी बेहूदा बातें अब देर तक चलने वाली नहीं हैं जिसे आप आचार विचार के नाम से पुकार बड़ा घमण्ड कर रहे हैं कि हम मनुष्य मात्र में परम पुनीत और सर्वश्रेष्ठ हैं वही एक ऐसा कोढ़ है कि हिन्दू जाति और हिन्दू समाज को नित्य नीचे को गिराता गया और गिराता जायगा। मसल है :—

"ऊँचे दाना कुनद कुनद नादान बकै ख़राबियें बिसियार"

इसलिए कुलीनता की लाज रखने को हमे फूँक फूँक कर पाँव रखना मुनासिब है। अब आप चाहे समझ गये हों कि यह संसार हमे दु.खमय क्यों बोध होता है। संशोधन के क्रम पर इस ढंग को आप छोड़ा नही चाहते तब क्योंकर हो सकता है कि जो दुःखमय है वह सुख रूप हो जाय? अन्त मे किसी बुद्धिमान् की यह भविष्य वाणी अवश्य चरितार्थ होने वाली है :

सद्वंशाः प्रलयं सर्वे गमिष्यन्ति दुराशयाः।

बुद्धिमानो का सिद्धान्त है

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।
अर्द्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसहः॥

खान पान की व्यर्थ की छिलावट इतना अधिक हमारे समाज मे बढ़ी हुई है कि इस समय उसका निबाहना महा दुष्कर हो रहा है इसलिए ऐसा मालूम होता है कि अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव से कुछ दिनो मे हिन्दूपन का जो कुछ आभास मात्र बचा है वह भी न रह जायगा। नई सभ्यता के अनुसार खुदाबक्श ब्रह्मचारी के पवित्र होटलों मे शुद्ध भोजनो की प्रथा प्रचलित होती जाती है, खरबूज़े को देख खरबूजा रंग पकड़ता है बल्कि यों कहिये यह फ़ैशन मे दाखिल है। कुलीनो को अपनी कुलीनता का अभिमान बढ़ रहा ही है तब क्या इधर पेड़ा भी छीलते जाइये उधर नई तालीम के ज़ोम मे भरे हुए आपके नौजवान आपकी आँख बरकाय इधर उधर होटलों मे भी मुँह मारते रहैं। आपके सामने समाज मे प्रगट करने को कण्ठी या रुद्राक्ष, भस्म और त्रिपुण्ड रमाय दो घण्टे तक पूजा भी करते जायँ उधर सभ्य समाज मे दाखिल हो शेम्पेन और ह्विस्की पर भी तोड़ करै। हमारी क्षुद्र बुद्धि मे ऐसा आता है कि ऐसी दशा में कदाचित् ऐसा होने से समाज के न बिगड़ने की अधिक आशा हो सकती है कि एक एक समूह के लोग अपने अपने समूह मे सह-भोजन की प्रथा

१४—चढ़ती जवानी की उमंग

समय राज का यह दोष कि 'कभी एक सा न रहा' लक्ष्य करने लायक है। बाल पौगण्ड तब कैशोर फिर युवा, युवा से अधेड़ उपरान्त बुढापा जीव मात्र के साथ लगा रहता है। सर्जित पदार्थ मात्र के साथ यह अदल बदल चला ही जाता है। नामी से नामी वैज्ञानिक, दार्शनिक, डाक्टर, वैद्य या हकीम तथा और और आमिल क़ाबिल जो अपने अपने फन या हुनर का दावा रखते हैं उनकी भी इस अदल बदल के दूर करने मे एक नहीं चलती। एक वह समय था जब हम भी नव प्रसूत सद्यः प्रस्फुटित कुसुम सदृश तारुण्य संपन्न जवानी के जोश मे भरे मदमाते हो रुस्तम को भी कुछ माल नही समझते थे; संसार सब भुनगा समझ पड़ता था साहस और उद्योग मे एकता थे। अपनी रूप-माधुरी और सौन्दर्य मे रूप-राशि अश्विनी कुमार तथा कामदेव से अपनी तुलना करते थे। उत्साह और हौसिला तथा नई नई उमगों के आगे बड़े से बड़े काम तुच्छ और हलके जॅचते थे। मन होता था कि कोई ऐसी मेगनाटिक पावर हासिल करे या कोई ऐसा वाष्पीय यंत्र या विद्युत् शक्ति ईजाद करे कि आसमान के सातवें तबक मे तैरते फिरे। अथवा वेगगामी विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ का पर नोच खसोट अपने मे लगा लें कि ऊँचे से ऊँचा सत्य लोक पर्यन्त जा घूम आवे अथवा कोई ऐसा वर्मा निकाले कि अतल, वितल, सुतल, तलातल, पाताल पर्यन्त उससे छेद डाले। अर्जुन ने भीष्म को बाण-गंगा का जल पिलाया था सो तो सब कथानक और पोथी का भाटा मात्र रहा हम कर के दिखा दे। एक लात मारे तो समस्त भूमण्डल कॉप उठे, ज़लज़ला छा जाय, दिशाओं के अन्त मे दिग्गज चिल्ला उटे। शरीर: तरारी मे वीराग्रगण्य जापानी जो इन दिनों वीरता का नमूना दिखलाने

जो बुद्धिमान् करते हैं उसी को निर्बुद्धी भी पीछे से करने लगते हैं पर बड़ी खराबी और दुर्गति सहने के उपरान्त। यह निश्चय है कि समाज को जीर्ण और छिन्न-भिन्न करने वाले खान-पान के अनेक ढकोसले अब नही चल सकते। नई उमग की, नूतन सभ्यता में प्रवेश पायी हुई हमारी या आपकी सन्तान सब एकामयी कर डालेगी। मुसलमान, पारसी, ॲंगरेज़, हिन्दू खुला खुली एक साथ बैठ खाद्य अखाद्य सब कुछ खायॅंगे जिस बात को अभी छिपाय के कर रहे हैं उसको प्रत्यक्ष में करने मे ज़रा भी न शरमायॅंगे। प्राचीन महत्तम ऋषियो की चलाई प्रथा जिसे आपने निरा ढकोसला कर डाला सर्वथा निर्मूल हो जायगी। यह सब आप गवारा करेंगे और यह आपको पसन्द न आवेगा कि हिन्दू मात्र या उनमे की एक एक जाति ईर्ष्या द्रोह और मन्द बुद्धि को अलग कर भ्रातृस्नेह की डोरी मे खिच एक साथ खायॅं पिये और अपने देश या जाति की तरक्की मे दत्तचित्त हो यथेष्ट हित साधन करें। बटलोही के चावल की टटोल की भाँति दो एक बात हमने आपके भ्रष्ट समाज का यहाँ दिखलाया जिससे चित्त घिनाय यही कहने का मन होता है कि ससार केवल दुःख रूप है। काहे को हम समाज के अनेक इस तरह के कोढ जो दुःख और क्लेश दे रहे हैं उसे दूर हटाय अनन्त सुख सन्दोह का हेतु उसे करैंगे। अस्तु, अब इस लेख को राड़ो के चरखे की तरह कहाँ तक ओटते चले जायॅं साराश यह कि ससार सुख सन्दोह का परमोत्कृष्ट मन्दिर है हम अपने कुढंग और कुचरित्र से अपवित्र कर अपने जीवन को दुःख पूर्ण कर रहे हैं।

सितम्बर, १८९५

महामलिन आकार और कसीफ मैले-कुचैले कपड़ों को देख लोग यही अनुमान करते होंगे कि यह कोई अत्यन्त निष्किंचन परम दरिद्र होगा, यह किसी को क्या मालूम कि कारूं का ख़ज़ाना हमी अपने नीचे गाड़े बैठे हुये हैं या कुबेर की संपति हमारे ही पास गिरो है।

"दृढतरनिबद्धमुष्टेः कोपनिषण्णस्य महामलिनस्य।
कृपणस्य कृपाणस्यच केवलमाकारतो भेदः॥

अस्तु, ईमानदारी और उदार भाव को काली के खप्पर में झोंक इस भाँति रुपया जोड़ यमराज की पहुनाई के लिये हम सिधार गये। दोही एक पुश्त के उपरान्त हमारे वंशधरों में ऐसे हुये जिन्हें युवा अवस्था आने पर रुपया फूकने का जोश सवार हुआ। तमाशबीनी और शराब खोरी का शौक चर्राया, मटियाबुर्ज के नौवाब बनने का हौसिला हुआ, मीर शिकारों को काठ का उल्लू हाँथ लगा, भाँड़ भगनिये खुशामदी टट्टुओं की बन पड़ी। चुटकी बजा बजा लगे भालू सा उसे नचाने "भइया साहब, आप इन दिनों अमीरी और रियासत में शहर की नाक हैं" एक दूसरा आय झुक के सलाम के बाद 'हुज़ूर, नौवाब साहब के खोजासरा ने आप के लिये तुहफे भेजे हैं" दूसरा "हाँ भैया कहत तो ठीक बटले—" भैया साहब फूल कर कुप्पा सा हो गये इनाम इकराम में लगे रुपया दोनों हाँथ उलचने। इस बात के जोश में भरे हुये हैं कि हमारे बराबर का अमीर दूसरा कोई न सुनने में आवे। बरस ही छ महीने में कदर्य बाबा की कमाई जिसे उसने आधा पेट खाय न जानिये कौन कौन सा अन्याय और दुराचार से इकट्ठा किया था खोय बहाय साफ कर डाला। कृपण का धन जिस ढंग से आया था उसी ढंग पर चला गया। सच है:—

"यदि नात्मनि पुत्रेषु नच पुत्रेषु-नप्तृषु।
नत्वेवं चरितो धर्मः कर्तुर्भवति नान्यथा"॥

पुण्य या पाप कर्म जो मनुष्य से बन पड़ता है पहिले तो उसी पाप या पुण्य करने वाले पर आता है कदाचित किसी कारण उसपर

में सबों को अपने नीचे किये हैं उनके भी छक्के छुटा दे, हिकमत मे अरस्तू और लुकमान को भी कहो कुआँ झकावे। हमारी वक्तृता के आगे वाचस्पति रद्द हुई हैं, डिमास्थानीज़ और सिसिरो भी रहते तो शरमा जाते; तब इन दिनो के छोटभइये केशव सेन, सुरेन्द्रनाथ, दादाभाई, एनीबिसेंट, मिस्टर ग्लाडस्टन, मालवीय प्रभृति किस गिनती मे हैं। किसी व्यवसाय की ओर झुक पड़ै तो ".किदूर व्यवसायिनाम्" को लिखने वाले को सिद्ध कर दिखावे कि देखो व्यवसाय और उद्यम इसे कहते हैं। यूरोप और अमेरिका तो मानो घर आगन था, पुराणो के सात द्वीप नौ खण्ड या यो कहिये पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्ध (ईस्टर्न और वेस्टर्न हेमी स्फेयर) दोनो को छान उनका सत्त निकाल ले या यो कहिये अपनी वाणिज्य की योग्यता (ट्रेडिंग कैपसिटी) को लेई सा पकाय दोनो गोलार्द्धों को एक मे चिपका दे। हमारी पहलवानी के आगे रुस्तम का कोई रुतबा न रहा। सच है:—

"मक्खी का भुजदण्ड उखाड़ूँ तोड़ूँ कच्चा सूत।
घूसन मार बताशा फोड़ूँ हूँ मै बडा मज़बूत॥"

उदारता मे हमे कलियुग का करन कहना कोई अत्युक्ति नही है। "चमड़ी जाय दमड़ी न जाय"—भी हमारे लिये बहुत ही सुघटित है। हम अपनी जवानी का जोश यही बतला रहा था कि किफायत करना बड़ी चीज़ है। किसी को और और हौसिले होते हैं हमे अपनी नई उमग मे रुपया जमा करने का भूत चढा था। रूखे-सूखे अन्न से किसी तरह झोंझ समान इस उदर को भर लेते थे पर रुपया जोड़ते गये। औरों को किसी दूसरी बात मे नाम पैदा करने को रुचि होती है हम को वद्धमुष्टि बज्र कृपिणता मे नाम कमाने का शौक़ था। सूरत देखना कैसा, भोर को उठते हमारा नाम किसी की ज़बान पर आ जाय तो लोग कानों मे उगलिया देने लगते थे और सोचते पछताते थे कि न जानिये आज का दिन कैसा कटै? काइयापन और सुमाई के फन में कलकत्ता की बड़ी बाज़ार के मारवाडी भी हमे मान गये। हमारा

पैंतीस से पैंतालीस के बीच इन दिनो जब कि इकतालीस से पचास तक मे जीवन की परमावधि है औसत निकाला जाय तो सौ मे पचहत्तर के लगभग इसी उमर में प्रयाण कर जाते होंगे। बाल्य-विवाह कायम रहे देखिये आगे चल तीस या पैंतीस अथवा चालीस ही परमायु रह जायगी। इसी उमर को अधेड़ कहेंगे जब लोग नब्बे और सौ तक पहुँचते थे तब चालीस या पैंतालीस ठीक ठीक उसका आधा हुआ इस समय जवानी की उमंग बलवीर्य पुरुषार्थ सब बना रहता है चढ़ती उमर का छिछोरपन भी अब तक सिमिट आता है। चरित्र मे गुरुता, विचार मे स्थिरता, शालीनता या बुर्दबारी शील संकोच बड़ो के साथ उनका बड़प्पन का बर्ताव छोटो की छोटाई का खयाल भरपूर आ जाता हैं। समाज में लोग भी उसे मानने और इज्ज़त देने लगते हैं। यदि वह शुद्ध चरित्र का है तो उसकी सब बातों पर ज़ोर आ जाता है विशेष क्या कहैं हम तो समझते हैं कि बीस या बाइस तक की उमर का पढा लिखा और चालीस से पचास तक का अपढ दोनो समझ मे एक से हैं। बल्कि लौकिक व्यवहार में पहिले की अपेक्षा दूसरा अधिक परिपक्क बुद्धि का होगा। खेद है कि हमारे यहाँ की जल वायु मे चिरकाल से सहानुभूति और आत्म-त्याग (सेम्पेथी और सेल्फ सेक्रफाइस) का बीज बहुत दिना से चला गया है ईश्वर करै जल्द ये दोनों यहाँ के जलवायु में कदाचित् आ जाँय तो निश्चय है ये लोग हमारे बड़े उपकार के हों। नई उमंग वालो में बहुधा ये दोनो गुण पाये जाते भी हैं तो चालीस या पचास तक पहुँचते पहुँचते बिलकुल बुझ जाते हैं इस उमर तक टटके बने रहैं तो भारत के उत्थान में फिर विलम्ब न रह जाय। वाचक वृन्द, यह क्षुद्र लेख इस समय हमारी लेखिनी का उमङ्ग उठ आया सो निवेदन किया इसमे बहुत सी त्रुटियाँ भी होगी उस पर ध्यान न दे यदि इसमें कोई गुण हो और कोई अच्छी शिक्षा निकलती हो तो उस त्रुटि को आप भूल जायँगे।

अगस्त: १६०८

न आया तो उसके पुत्र पर आ उतरता है। पुत्र पर भी न आया तो नाती या पोतो पर तो अवश्य ही आता है, कभी व्यर्थ जाता ही नहीं। इसी से पुराने लोगों की यह कहावत है "बाढै पुत्र पिता के धर्मे" समझदार, शान्तशील, सुकृती पिता भी अनेक क्लेश और संकट सहते कुपथ से बचते फूंक फूंक कर पाँव धरते हैं जिसमे उनके सन्तान पर उनके सुकृत का फल आ उतरे और वे फलै फूलै। तात्पर्य यह कि चढती उमर नई जवानी का जोश अद्‌भुत होता है जिसका कुछ थोड़ा सा कई एक ढग का चित्र हमने यहाँ पर खीच कर कई तरह के दृश्यों मे दिखाया है। मनुष्य के जीवन मे यह वह वयक्रम है जो तमाम जिन्दगी भर के बनने बिगड़ने की वीजारोपणस्थली है। इसी से कहा भी है "जो ना ह्वै है बीस पचीसा, सो का ह्वै है तीसा"—यह समय जिसमे मनुष्य के जीवन मे होनहार शुभ अशुभ परिणाम का अकुर पैदा होता है जब इन्द्रियाँ सब अविकल रहती हैं दिन प्रति दिन मानसिक शक्तियो का प्रकाश बढता ही जाता है, जीवन की अनेक ऊँची नीची दशा नही झेले रहते इससे उनके अनुभव मे कचाहट रहती है जिससे उनका विचार बहुधा दोष दूषित रहता है चालीस के ऊपर पहुँचते पहुँचते यह दोप भी निकल जाता है और सब तरह की पूर्णता आ जाती है। काम करने का यही समय है, इसलिये कि अब इनकी हर एक बात मे गुरुता विचार शक्ति, (डिशीशन) मे पुष्टता आ जाती है चरित्र दूषित होने का खटका भी जाता रहता है। जिसने इस समय को खो दिया, अपने लिये तथा समाज के लिये कोई ऐसी बात न कर गुज़ारा जिससे प्रकृति के बड़े रोज़नामचे मे उसका नाम दर्ज किया जा सके उस पुरुष का जीवन व्यर्थ है। उसने मानो अपने ही को ठगा आगे चल उससे कोई काम काहे को बन पड़ेगा क्योंकि उपरान्त आगे बढने की कौन आशा रही जब कि शारीरिक बल मानसिक शक्ति पौरुषेय गुणों मे नित्य घटाव ही होता जाता है। सच पूछो तो जो कुछ करने का समय है और जिन्होंने कुछ किया है वे इसी तीस

यही कारण है कि बालक साधारण से साधारण वस्तु को बड़े चाव से देखता है। तात्पर्य यह है कि बालक की मानसिक शक्तियों का विकास 'मेंटल डेवेलपमेंट' जैसा नेत्र के द्वारा होता है वैसा कान आदि के द्वारा नही। किसी चटकीली चमत्कृत बात को सुन कर जो मन में उत्सुकता पैदा होती है वह नेत्र ही के द्वारा शान्त होती है। सुनने और देखने के भाव को किसी ने नीचे के श्लोक में बड़ी चातुरी के साथ प्रगट किया है :—

श्रुत्वापि दूरे भवदीय वार्तां नेत्रौ च तृप्तौ नहि चक्षुषीमे।
तयोर्विवादं परिहर्तुकामः समागतोहं तव दर्शनाय॥

अर्थात् आपके उत्तम गुणों की चर्चा सुन कर कान तो तृप्त हो गये पर आँखे नही। जब आपकी बात चल पड़े तब कान जिन्होंने सुन रक्खा था, प्रशंसा करने लगै और आँखें जिन्होंने देख नही रक्खा था लड़ा करें। उन दोनो का झगड़ा मिटाने को हम आपके दर्शन को आये हैं। नल के गुण-स्तुति का नैषध काव्य में भी ऐसा ही एक श्लोक है।

अदस्तकार्ण्यं फलाढ्यजीवितं दृशोर्द्वयोर्नस्तदवीक्ष्य चाफलम्।
इतिस्मचक्षुश्रवसां प्रिया नले स्तुवन्ति निन्दन्ति हृदा तदात्मनः॥

सर्प चक्षुश्रुवा होते हैं, अर्थात् आँख ही से देखते और सुनते भी हैं। नाग पत्नियाँ नल का यश सुन कर प्रसन्न होती हैं और अपना जन्म सफल मानती हैं; पर देखा नहीं इससे अपने को विफल जन्मा मान अपनी निन्दा भी करती हैं।

आग मे घी छोड़ने की भाँति कभी-कभी देखने से मन और अधिक उत्सुक होता जाता है। जैसे प्रेमी को अपने प्रेम-पात्र के देखने में, सच्चे भक्त को अपने इष्टदेव के दर्शन में, एक बार, दो बार, दस बार, सौ बार, सहस्र बार जितना ही देखता जावे उतनी ही चाह बढ़ती जायगी। फिर मन का तो आँख से ऐसा घना सम्बन्ध है कि मन

१५—चित्त और चक्षु का घनिष्ट सम्बंध

चित्त जिसके द्वारा चैतन्यमात्र को वाह्य वस्तु का ज्ञान होता है उसका चक्षु के साथ जैसा घनिष्ट सम्बन्ध है वैसा दूसरी ज्ञानेन्द्रियो के साथ नहीं। दार्शनिक, जो 'दृश्' धातु से बना है, दृष्टि और मन दोनो के सम्बन्ध का मानो निचोड़ है, अर्थात् वह मनुष्य जो किसी वस्तु को देख उस पर अपनी मानसिक शक्ति का ज़ोर दे। इसी से किसी बहुदर्शी विद्वान का सिद्धान्त है कि बुद्धिमान् का चित्त चक्षु है। हम लोग प्रतिक्षण संसार के सब पदार्थों को देखा करते हैं, पर उन देखी हुई वस्तुओ पर मन को जैसा चाहिए वैसा नही लगाते। एक तत्त्व-दर्शी विद्वान का देखना यही है कि उसके नेत्र उस देखे हुए पदार्थ की नस-नस में पैठ मन को काम मे लाकर सोचते-सोचते उसके तत्त्व तक पहुँच जाते हैं। लटकती हुई चीज़ों को इधर-उधर झूलते सब लोग देखते हैं, पर लटकते लैम्प को हवा मे झोंका खाते देख गेलीलियो के मन मे एक अनोखी बात आयी। उन्होंने देर तक सोचने के उपरान्त निश्चय किया कि इस तरकीब से हम समय को अच्छी तरह नाप सकते हैं और वही घड़ी के पेंडुलम की ईजाद का मूल कारण हुआ। क्षुद्र पदार्थो को देख मन का उन पर एकाग्र होना बड़े से बड़े विज्ञान और अनेक कलाओं के प्रचार का हेतु हुआ। न्यूटन ने भी तो सेव के फल को नीचे गिरते देखा ही था, कि जिस पर चित्त को एकाग्र कर सोचते-सोचते आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त दृढ किया, जिस शक्ति के बल से ब्रह्माण्ड, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी, तारागण, ग्रह, नक्षत्र सब अपनी-अपनी कक्षा में नियत समय मे घूमा करते हैं। नितान्त अज्ञ दुधमुंहे बालक को जिसकी मानसिक शक्ति अत्यन्त अल्प रहती है उस समय नेत्र ही ज्ञान का द्वार रहता है।

"क्यों बसिए निरवारिए नीति नेहं पुर नाहिं।
लगा लगी लोचन करैं नाहक चित बँधि जाहिं॥
नैना नेक न मानहीं कितेउ कह्यो समझाय।
तन मन हारे हू हसैं तिनसों कहा बसाय॥
दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिये दई नई यह रीति॥"

किसी शायर का क़ौल है :—

"दीदार दिलरुबा का दीवार क़हकहा है।
जो उस तरफ़ को झाँका वह इस तरफ़ कहाँ है॥"

प्रेमी के वियोग मे जब ये नेत्र निरास हो बैठते हैं तब अपने सहयोगी मन को उस ओर भेजते हैं, जो दिनरात उसकी खोज मे प्रवृत्त हो जाता है। दैवयोग से प्रेमी मिल गया तो नेत्रो को ठंढक पहुँचती है; नहीं तो सन्ताप मे झुलसा करते हैं।

"प्रेम बनिज कीन्हो हुतो नेह नफा जिय जानि।
अब प्यारे जिय की परी प्राण पुंजी मैं हानि॥"

अन्त मे अपनी दशा का देखना यावत् सुधार और मन के शान्ति का हेतु है। जो अपनी दशा देख कर काम करते हैं वे सदा सुखी रहते और सङ्कट मे नहीं पड़ते हैं।

दिसम्बर· १९०९

को लोग हिए की आँख कहते हैं। सूरदास ने एक विनय मे कहा भी है—

"सूर कहा कहै दुविध आंधरो बिना मोल को चेरो।
भरोसो दृढ इन चरणन केरो"।

भगवान् न करे किसी की हिए की फूटे, जिसके फूटने से फिर किसी तरह निस्तार नही है। बाल्य-विवाह के शौकीनों की हिए की फूटी हैं, दुधमुहों को व्याहने से सरासर नुक़सान है, देश का देश धूर मे मिल गया, फिर भी ज्ञान नहीं होता। हमारा मन यदि किसी एक बात पर एकाग्र रहे तो हजारो चीज़े देखकर भी उनका कुछ स्मरण नही रखते, अतः निश्चय हुआ कि हृदय की आँख इस चर्म चक्षु से कितनी अधिक प्रबल है। इससे हिए की आँख से देखना ही देखना है। और इस तरह का देखना जो जानते हैं उन्ही का ठीक-ठीक देखना है। चतुर सयाने, जिन्हें यह हुनर याद है, बाहरी आकार, चेष्टा और बोल चाल से तुम्हारे मन म क्या है, उसे झट जान लेते हैं।

"आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेनच।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः" ॥

ऐसो को हम मन-माणिक की क़दर करने वाले और पहिचान रखने वाले जौहरी कहेंगे। मन को पवित्र या अपवित्र करने का द्वार नेत्र है। किसी पुण्याश्रम, तपाभूमि, गिरि, नदी, निर्झर आदि तीर्थ विशेष मे जाकर वहाँ के प्राकृतिक पवित्र दृश्यो को देखते ही या किसी जीवनमुक्त महापुरुष के दर्शन से मन यकबारगी बदल जाता है। पापी से पापी ठगो और डकैतों का हाल देखा और सुना गया हैं कि ऐसे लोग महात्माओं के पवित्र स्थानो मे जाते ही या किसी महात्मा का दर्शन कर अपने पाप-कर्म से छुट ऋषि-तुल्य शान्त स्वभाव के हो गये हैं। लोग मन को व्यर्थ ही चञ्चल प्रसिद्ध किये हैं। चञ्चलता नेत्र करते हैं, फँसता है बेचारा निरपराधी चित्तः—

रहती है उस समय नेत्र ही ज्ञान द्वार होता है और यही कारण है कि बालक हर एक साधारण सी साधारण वस्तु को भी बड़े चाव और अचरज के साथ ग्रहण करता है तात्पर्य यह कि बालक को (मेंटल डेवलपमेंट) मानसिक शक्तियों का प्रकाश जैसा नेत्र के द्वारा देखने से होता है उतना सुनने आदि से नहीं। किसी चटकीली चमत्कारी वस्तु को सुन जो मन में उत्सुकता या व्यग्रता पैदा होती है वह नेत्र ही के द्वारा शान्त होती है। कभी को देखने से मन और अधिक उत्सुक होता जाता है जैसा प्रेमी को अपने प्रेम पात्र के देखने में सच्चे भक्त को अपने इष्ट देव के दर्शन में एक बार दो बार दस बार सहस्र बार जितना हो देखते जाइये देखने की अभिलाषा अधिक-अधिक होती रहेगी जैसा आग में घी छोड़ने से आग और धधकती है।

मनुष्य के तन में एक आँख ही सार पदार्थ है और मन का तो इसके साथ ऐसा घना सम्बन्ध है कि मन को लोगों ने हिये की आँख ही मान रक्खा है। सूर ने अपने एक विनय में कहा भी है—

"सूर कहा कहै द्विविध आँधरो बिना मोल को चेरो।"

ईश्वर न करे किसी की हिये की फूटे, हिये की फूटने से फिर किसी तरह पर निस्तार नहीं है। हमारे देश वालों के हिये की फूटी है हम लोग सौ बार सहस्र बार कहते-कहते थक गये इन्हें चेताने और हिये को खोलने के लिये भरसक यत्न करने में त्रुटि नहीं करते पर इनके चित्त में उसका अणुमात्र भी असर नहीं होता। हमारा मन यदि किसी एक वस्तु में एकाग्रता के साथ लगा ऐसे समय हम हज़ारों चीज़ों को देख कर भी उनका कुछ स्मरण नहीं रखते। इससे सिद्ध हुआ कि हृदय की आँख हमारे चर्मचक्षु से कितना अधिक प्रबल है: तस्मात् हिये की आँख से जो देखना है और इस तरह का देखना जिन्हें मालूम है वेही ठीक ठीक देखना जानते हैं। चतुर सयाने जिन्हें इस तरह के देखने का हुनर याद है बाहरी आकार

१६—मन और नेत्र

हमारे यहाँ के दार्शनिक मन को सब इन्द्रियो का प्रभु मानते हैं। उनका सिद्धान्त है हाथ पाँव इत्यादि इन्द्रियो का किया कुछ नही होता यदि मन उस ओर रुजू न हो।

"मनः कृतं कृतं लोके न शरीर कृतं कृतं"

मनका सरोकार यद्यपि समस्त इन्द्रियो के साथ है पर नेत्र के साथ तो उसका सबसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी बुद्धिमान् का सिद्धान्त है कि अक़िलमन्दों का मन आँख मे रहता है। दार्शिनिक यह शब्द ही दृश धातु से बना है अर्थात् वह मनुष्य जो किसी वस्तु को देख उस पर अपनी मानसिक शक्ति को ज़ोर दे। हम सब लोग दिन रात हर एक वस्तु ससार की देखा ही करते हैं पर उन देखी हुई चीज़ों पर मन को कभी ज़ोर नही देते। वही बुद्धिमान् जन हैं "कहना चाहिये देखना जिन को ही आता है" उनके नेत्र उस देखे हुए पदार्थ के नस-नस मे प्रवेश कर उस पर मन को काम मे लाय सोचते-सोचते उसके तत्व तक पहुँच जाते हैं। लटकती हुई चीज़ों को मामूली तौर पर झूलते हुये सब लोग रोज़ देखा करते। लटकते हुये लैम्प को इस प्रकार हवा में झोका खाते देख गेलिलियो के मन मे यह एक अनोखी बात बोध हुई और इस बात को देर तक सोचने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि इस तरकीब से हम समय अच्छी तरह पर नाप सकते हें और यही घड़ी के पेडुलम की ईजाद का मूल कारण हुआ। अत्यन्त क्षुद्र से क्षुद्र पदार्थ का देखना ही है जिस पर मन एकाग्र हो बड़े-बड़े विज्ञान, विद्या, और कलाओ के प्रचार पाने का हेतु हुआ है। नितान्त अज्ञ दूध मुहें बालक को जब कि उसकी मानसिक शक्ति अत्यन्त अल्प

छूट जाता है, दैवयोग से प्रेमी मिल गया तो अच्छा नहीं तो जीने से भी हाथ धो बैठता है; सच है :—

प्रेम वनिज कीन्हों हुतो नेह नफा जिय जानि।
अब प्यारे जिय की परी प्रान पुंजी मे हानि॥

अपनी दशा का देखना मनुष्य के लिये यावत् सुधार और मन को अनोखी शान्ति का हेतु है। जो नाक निगोड़ी के कट जाने का भय छोड़ अपनी दशा देख कर क़ाम करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं और कभी सकट मे नही पडते।

सर्वथा स्वाहितमाचरणीय किंकरिष्यति जनो वहु जल्पः।
विद्यते न खलु कोपि उपायः सर्वलोकपरितोपकरो यः॥

अनेक प्रचलित कुसस्कारों मे हमारे समाज के बीच नाक कट जाने का भय भी ऐसी बड़ी बुराई है कि इससे न जानिये कितने घराने घूर में मिल गये। जब तक हम अपनी दशा न देख इसी तरह नाक बढाते रहेंगे तब तक कभी किसी लायक़ न होंगे। हम अपने से कम सुखी लोगों को देख उनकी दशा से अपनी दशा मे तारतम्य देखते रहें तो दुख कभी पास न फटके और चित्त सदा के लिये शान्ति देवी का पवित्र मन्दिर बन जाय। हमने मन और नेत्र का सम्बन्ध दिखलाया इसमें जो कुछ त्रुटि रह गई हो पाठक जन सम्हाल लें।

—अप्रैल; १८६०

चेष्टा बोल-चाल और इशारे से मनुष्य का अन्तर्गत मन जान लेते हैं और मन मानिक की कदर जानने वाले और परखने वाले जौहरी भी ऐसे ही लोग हैं। मन के पवित्र या अपवित्र करने का द्वार नेत्र है। किसी पुण्याश्रम तपो-भूमि, गिरि, नदी, निर्झर आदि तीर्थ-विशेष मे जाकर वहाँ के प्राकृतिक पवित्र दृश्यो को देखते ही, या किसी जीवन्मुक्त महापुरुष के दर्शन से मन एक बारगी बदल जाता है। बड़े-बड़े महा-पापी ठग और डकैतों का हाल देखा और सुना गया है कि ऐसे लोग पवित्र स्थान मे जाते ही या किसी पुण्यशील महात्मा से मिल कर सदा के लिये अपने उस पाप कर्म से अलग हो गये, महाशान्ति भाव धारण कर ऋषि तुल्य बन गये हैं। लोग मन को नाहक चञ्चल-चञ्चल कह कर प्रसिद्ध किये हैं चाञ्चल्य नेत्रो का रहता है, बझता है निर-पराधी मन वेचारा।

क्यों बसिये क्यों निबाहिये नीति नेह पुर माहि।
लगा-लगी लोयन करैं नाहक मन बँधि जांहि॥
दृग उरझत, टूटत कुटुंब, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये, दई, नई यह रीति॥
नयना नेक न मानहीं कितौ कह्यो समुझाय।
तन मन हारे हूँ हसै तासों कहा बसाय॥

सच मानिये, मन महा अमीर को बहका कर आशिकी के पन्थ मे ले जाने वाले ये लोचन कुटने दूत हैं जो इसे इश्क के जाल मे फँसा कर फिर किसी काम का नही रखते। किसी शायर ने कहा है: —

दीदार दिलरुबा का दीवार क़हक़हा है।
जो उस तरफ को झाँका वह इस तरफ कहाँ है॥

फिर जब प्रेमी के वियोग मे ये निरास हो बैठते हैं उस समय मन से अपने सहयोगी नेत्रों की तरस नही सही जाती, विकल हो सब ओर से दिन रात एक उसी की खोज मे प्रवृत्त हो जाता है। खान पान तक

भाव संशुद्धि अर्थात् लोगों के साथ बर्ताव मे माया कपट कुटिलता छल छिद्र का न होना। अथवा क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य जो मन को मैला करने की बड़ी सामग्री हैं उनसे दूर रहना इत्यादि सब मन के गुण हैं। उसी को मानस तप भी कहेगे। मन के और भी गुण सहानुभूति, आश्चर्य कुतूहल पूर्वक जिज्ञासा, प्रेम बुद्धिया प्रतिभा, विचार या विवेक आदि हैं। सहानुभूति यद्यपि मन की सौम्यता के अन्तर्गत है किन्तु सहानुभूति का लेशमात्र भी अकुरित हो चित्त में रहना जन समाज के लिये बड़ा उपकारी है। उपकार के प्रति उपकार सहानुभूति न कहलावेगी वरन् वह तो एक प्रकार की दूकानदारी और लोक रजन है। सच्ची सहानुभूति वही है कि हम अपने सहवरगी या साथी को दुखी देख दया मन मे लाय उसके दुख दूर करने मे तन मन धन से प्रवृत्त हों। हमारे यहाँ इन दिनो सहानुभूति का बड़ा अभाव है। इसी कारण हम नीचे गिरते जाते हैं। अगरेजी शिक्षा के अनेक गुणो मे यह भी एक उत्कृष्ट गुण है कि अच्छा पढा-लिखा अपने हम-वतन दोस्तों के साथ हमदर्दी करने मे नहीं चूकता। अनेक प्रकार के दान इसी बुनियाद पर रक्खे गए हैं कि सहानुभूति वाले मानसिक गुण में पुष्टता पहुँचे। किन्तु वह अब केवल यश प्राप्ति के लिए रह गया। इसमें सदेह नहीं अब भी दान जितना हमारे यहाँ दिया जाता है किसी देश मे इतना नहीं दिया जाता पर सहानुभूति की बुनियाद पर न रहने से बे-फायदा है और राख मे होम के बराबर है।

आश्चर्य और कुतूहल दोनो सीधे और भोले चित्त के धर्म हैं। लड़कों को छोटी छोटी बातों पर कुतूहल होता है और चित्त का कुतूहल दूर करने को वह अनेक ऐसे प्रश्न करता है जिस पर बहुधा हँसी आती है। तो कुतूहल ज्ञान की वृद्धि का एक द्वार ठहरा। लड़का पाँच वर्ष की उमर तक मे जो कुछ सीखता है वह तमाम ज़िन्दगी भर में नहीं सीखता। ज्यों ज्यों वह बढ़ता जाता है और चित्त की सिधाई कम होती जाती है उसकी जिज्ञासा भी घटती जाती है। प्रेम भी सहानुभूति ही का एक

१७—मन के गुण

भगवान् कृष्ण चन्द्र ने गीता मे मानस तप को लक्ष्य कर मन के गुण इस भाँति कहा है :—

> मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
> भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मनःप्रसाद अर्थात् मन की स्वच्छता, सौम्यता या सौमनस्य जो बहुधा तभी होगा जब बाहरी विषयों की चिन्ता मे मन व्यग्र और व्याकुल न हो। बाहर से विनीत और सौम्य बनना कुछ और ही बात है मन का सौम्य कुछ और ही है। जिसकी बड़ी पहचान एक यह भी है कि वह किसी का अनिष्ट न चाहेगा वरन् सबों के हित की इच्छा रक्खेगा। तीसरा गुण मन का श्रीकृष्ण भगवान् ने मोन कहा है मौन अर्थात् मुनि भाव—एकाग्रता पूर्वक अपने को सोचना कि हम कौन हैं जिसका दूसरा नाम निदिध्यासन भी है। वाक्-सयम न बोलना या कम बोलना भी मन के सयम का हेतु है। मुनि भाव का लक्षण श्रीमद्भागवत मे इस तरह पर दिया गया है :—

> मुनिः प्रसन्नो गंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ।
> अनन्त पारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥

मुनि वह है जो सदा प्रसन्न अर्थात् विमल चित्त हो, गभीर अर्थात् जिसकी थाह लेना सहज काम न हो, न जिसका पार किसी ने पाया हो, जिसे कोई क्षुब्ध चलायमान न कर सके, ये सब गुण स्थिर सागर के हैं, सागर के सदृश जिसका मन हो वह मुनि कहा जा सकता है, मौन से सब बातें आदमी मे आ सकती हैं। आत्म विनिग्रह अर्थात् मन जो बड़ा चचल है उसे वृत्तियो के निग्रह करने से रोकना। सबसे बड़ी बात

१८—सुनीतितत्वशिक्षा

जैसे प्रकृति के नियमो के विरुद्ध चलने से विरुद्ध खान-पान आदि से जल वायु कृत अनेक शारीरिक रोग पैदा होते हैं जो देर तक शरीर को क्लेश पहुँचाते हैं। वैसे ही सुनीति तत्वशिक्षा "मॉरल ला" सम्बन्धी नियमों के तोड़ने से भी रोग होते हैं पर येह रोग उस तरह के नहीं हैं जो शरीर को क्लेश दे या बाहरी निदानों से उनकी पहचान की जा सके। देर तक शबनम मे बैठे रहिये प्रकृति के नियम आप को न छोड़ैंगे ज़रूर सरदी हो जायगी कई दिनों तक नाक बहा करेगी और विरुद्ध आचरण करते रहो ज्वर आ जायगा सरदर्द पैदा हो जायगा अठवारों पड़े पड़े खटिया सेवते रहोगे। वैसे ही सुनीति विरुद्ध चलने से "मारल ला" आपको न छोड़ैंगे। कितनों को हौसिला रहता है बुढापे तक जवानी की ताकत न घटै इस लिये तरह तरह के कुश्ते भाँत-भाँत के रस, पौष्टिक औषधियाँ सेवन करते हैं। खूबसूरती बढाने को खिजाव लगाते हैं, पियर्स सोप, गोलडेन आईल काम मे लाते हैं। सेरों लवेंडर तरह तरह के इत्र मला करते हैं जिसमे सौन्दर्य और फैशन मे कही से किसी तरह की त्रुटि न होने पावे। किन्तु इसका कहीं ज़िक्रिर भी न सुना कि सुनीतितत्व सम्बन्धी सौन्दर्य (मॉरल ब्यूटी) सुनीति के नियमों पर चलने का बल (मॉरल स्ट्रेंग्थ) क्या है उसको कैसे अपने मे लावें या उसे कैसे बढ़ावें?

जैसा सौन्दर्य और शारीरिक बल बढाने की चिन्ता मे लोग व्यग्र रहते हैं वैसा यह कहीं सुनने मे आया कि हम मे डाह मात्सर्य, पैशून्य, जाल, फरेब, बेईमानी, लालच, द्रोह-बुद्धि किस अन्दाज़ मे है उसमे से कुछ कम हो सकता है और कितने दिनों की मेहनत मे किस

रूपान्तर है। प्रतिभा, प्रतिपत्ति, संवित् आदि शब्द लगभग एक ही अर्थ के बोधक हैं और ये सब बुद्धि के धर्म हैं मन के नही। किन्तु मन पर उन सवो का असर पहुँचता है इसलिये हम उन्हे मन के अनेक गुणो मे मानते हैं। ऐसे ही विवेक और विचार भी बुद्धि के धर्म हैं किन्तु विचार के द्वारा बुद्धि के तराज़ू पर हम उसे तौलते हैं, जो कुछ परिणाम उस तौल का होता है उसे मन मे स्थिर कर तब आगे बढ़ते हैं। मन यद्यपि ज्ञान का आश्रय है पर उस ज्ञान को सत् या असत् निर्णय करा देना बुद्धि ही का काम है इसलिये विवेक और विचार के बिना निश्चयात्मक ज्ञान कभी होगा ही नही। मन जो बड़ा चंचल है उसका चाञ्चल्य रोकने को विचार बड़ा उपयोगी है इसलिए ऊपर के श्लोक मे कथित आत्म-विनिग्रह के ये सब अग हुए। आत्मविनिग्रह जिसका दूसरा नाम संयम भी है मनुष्य मे पूरा पूरा हो तो सिद्धावस्था तक पहुँचने मे फिर अड़चन क्या रही। दूसरे यह कि संयमी को कठिन से कठिन काम करना सुगम होता है। साराश यह कि ऊपर कहे हुए मन के सब गुण पारलौकिक या आध्यात्मिक उन्नति के साधन करने वाले तो हुई हैं हमारी इस लोक की उन्नति भी उनसे पूरी पूरी हो सकती है। इन सब उत्कृष्ट गुणो मे एक भी जिसमे हो वह मनुष्यों मे श्रेष्ठ और ऊँचा दरजा पाने का अधिकारी अवश्य बन सकता है।

—मार्च; १८९८

आशाया: खलुयेदासास्ते दासा जगतामपि ।
आशादासी कृतं येन तेन दासी कृतं जगत् ॥
अशीमहि वयं भिक्षां आशा वासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्बीमहि किमीश्वरैः ॥

सुकरात, अफलातू, अरस्तू, तथा अक्षपाद, कणाद, गौतम सरीखे दार्शनिक बुद्धिमानों के पास जो रत्न था और जिस सुख के घनानन्द का अनुभव उन्हें था वह उसे कहाँ जो धन संपत्ति तथा सांसारिक विषय-वासना की ज़हरीली चिन्ता से अहर्निश पूर्ण रहता है ।

जुलाई; १८६६

का ध्यान हम लाया चाहते हैं उसमे ऐसे ही कोई बिरले बड़े बुद्धिमान धनी-मानी या प्रभुता वाले होंगे जिनको अपने "मॉरल्स" सुनीति तत्व के सुधारने और बढाने की कभी को कुछ चिन्ता हुई होगी। सच तो यो है कि वास्तविक सुख बिना इस पर ख्याल किये हो ही नही सकता। हमारे मॉरल्स बिगड़े रहें और उस दशा मे वास्तविक सुख की आशा वैसा ही असंभव है जैसा बालू से तेल का निकालाना असभव है। वैभव प्रभुता या ससार की वे बातें जो इज्ज़त और मरतबा बढाने वाली मान ली गई हैं जिन के लिये हड्डी के एक टुकड़े के वास्ते कुत्ते की भाँत हम ललचा रहे हैं वे सब उसको अति तुच्छ हैं जो अपने "मॉरल्स" का बड़ा पक्का है। जो आनन्द इसमे मिलता है वह उस सुख के समान नही है जैसा विषय-वासना के सुख का क्रम देखा जाता है क्योकि विषय-वासना के सुख उसके लिये हौसिला रखने वाले की पहुँच के भीतर हैं पर सुनीति तत्व सम्बन्धी अलौकिक सुख हमारी पहुँच के बाहर हैं। लाखो इस सुख के शिखर तक चढने का हौसिला करते हैं पर कोई एक ही दो इसकी चोटी तक पहुँचता है।

सुनीति तत्व के सिद्धान्तों पर लक्ष्य किये और प्रतिक्षण अपने दैनिक जीवन मे उसका पालन करते हुये बुद्धि के आकुस से प्रेरित हो मनुष्य इस आनन्द का अनुभव कर सकता है पर इन लोहे के चनों का चबाना सर्व साधारण के लिये सहज नही है किन्तु इसके अधिकारी वेही हो सकते हैं जिनको उनकी झोपड़ी ही महल है। जिनकी आभ्यन्तरिक शान्ति की दशा के सामने बडी बड़ी बादशाहत भी मूल्य मे कम हैं। जो अपने सिद्धान्तों के बड़े पक्के हैं उनसे एक बार किसी ने पूछा—साहब आपको दुनिया मे औकात बसरी का क्या सहारा है? जवाब दिया अकिल, आप लोग विषय-वासना-लपट हो दुनियावी सुख की गुलामी के पीछे दौड रहे हो मै उसी को अपना गुलाम किये हुये हूँ। तब यह पूछना ही व्यर्थ है कि आपको अपनी प्राण यात्रा "औकात बसरी" का क्या सहारा है। सच है,—

"प्राप्ते च षोडसे बर्षे शूकरीप्यप्सरायते"

यही समय ऐसे अल्हड़पने का होता है कि इसमे यावत् प्रलोभन सब उमड़ उमड़ इधर ही आ टूटते हैं। इस तरुणाई की कसौटी मे कस जाने पर जो कही से किसी अंश मे न डिगा तो चरित्र की विजय वैजयन्ती उसी के गले का हार होती है। अवसान मे जब यह प्रौढत्व विदा हुआ तब वह सलोनापन न जाने कहाँ जा छिपता है? गाल चुचक जाते हैं बगुला की चोच सी लम्बी नासिका; खोड़हा मुँह; सूप से लम्बे लम्बे कान, गजा सिर कैसा बिलखावना मालूम होता है कि प्रेत के आकार सदृश देखते भय उपजता है। शुष्क-चर्म-पिनद्ध-अस्थि-शेष-कंकाल वीभत्स का साक्षात्कार सा किसमे न विभीषिका और घृणा पैदा करता होगा।

ऐसा ही हमारे प्राचीन आर्यों की सभ्यता का जब उदय था उस समय उसकी बाल्य-अवस्था थी, उस समय जो जो प्राकृतिक घटनाये (नेचरल फिनमेना) उनके दृष्टि-पथ की पहुनाई मे आई उन्हें दैवी गुण विशिष्ट, मनुष्य शक्ति वाह्य और इन्द्रियातीत समझ ईश्वर मान उनकी स्तुति करने लगे। जैसा ऋग्वेद मे (डान) उषा को देवी कह उसकी कमनीय कोमल मूर्ति के वर्णन मे कवित्व प्रतिभा को छोर तक पहुँचा दिया। इसी तरह सूर्य मे गरमी और उसका विशाल विम्ब (होरीजन) क्षितिज से ऊपर को उठते देख, सूर्य की गरमी और प्रकाश से पौधों को उगते और बढते हुये पाय चिरकाल तक तमारि सूर्य ही का सविता, अर्यमा आदि विशेषण पदों मे गुण गान करते रहे। "उद्वयं तमसस्परिस्वः" इत्यादि कितनी ऋचाये हैं जिन्हे सन्ध्योपासन के समय हम नित्य पढ़ा करते हैं। इसी तरह मेघमाला में क्षण सौहृदा विद्युत की चमक-दमक देख ऐरावत् और इन्द्र इत्यादि की कल्पनाओं से उनने दैवी शक्ति का आरोप कर उन उन घटनाओं का अनेक गुण गान करते रहे। पीछे जब उनकी सभ्यता अपनी प्रौढ़ दशा में आई तो आत्मा तथा सृष्टि के आदि कारण का

१६—आदि मध्य अवसान

सकल सर्जित पदार्थ जो वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त अनुसार जीव कोटि मे गिने गये हैं और जिनका जीव कोटि से किसी तरह का सम्बन्ध है उनकी आदि, मध्य, अवसान यह तीन अवस्था है। इन तीन अवस्थाओं में आदिम और मध्यम अवस्था सदा स्पृहणीय और मन को हरने वाली है। अवसान अर्थात् अन्तिम अवस्था ऐसी ही किसी की सोहावनी होती है वरन् अन्त की अवस्था बड़ी घिनौनी, रूखी और किसी के उपकार की नही होती।

आरम्भ या आदि हर एक का बहुत कुछ आशा जनक और मन भावना होता है, मध्यम या प्रौढ अवस्था उसी आशा को फलवती करने वाली होती है। पौधा जब लगाया जाता है या बीज जब प्रस्फुटित हो प्ररोह के रूप मे रहता है उस समय कटीले वृक्ष भी सुहावने लगते हैं। प्रौढ अवस्था कुसुमोद्गम के उपरान्त फलो से लद जाने की है। पुराना पड़ने पर वही पेड़ जब कम फलने लगता है बाग़ के माली को उसके बढाने या सीचने की वैसी मुस्तैदी नहीं रहती जैसी नये पौधों के लिए। जीवधारियो मे देखो तो दुधमुँहा शिशु मनुष्य का हो या किसी जानवर तथा चौपायों का हो ऐसा प्यारा लगता है कि यही जी चाहता है कि नेत्र उसकी मुग्ध मुखच्छबि को अनिमेष दृष्टि से देखता ही रहे। वही तरुणाई की प्रौढ अवस्था आते ही जवानी की नई उमग मे भरा हुआ दर्पान्ध कोई कैसा ही कठिन काम हो उसमे भिड़ जाता है और जब तक कृत कार्य न हो उससे मुँह नहीं मोड़ता। नस नस मे जब कन्दर्प अपना चक्रवर्तित्व स्थापित कर देता है तब कुरूप भी सुरूप, निर्जीव भी सजीव बोध होता है। सुषमा की यावत् सामग्री सब सोलहो कला पूर्ण हो जाती है। लवनाई और सलोनापन अपनी सीमा को पहुँच जाता है। कहा भी है,—

होता है, जैसा शीतकाल का अवसान। पूस माघ के जाड़ों में ठिठरे हुओं को फागुन के सुहावने दिन कैसे भले मालूम होते हैं। ऐसा ही जेठ मास की तपन के उपरान्त जब बरसात आती है और वर्षा के उपरान्त शरद। जाड़ा गरमी बरसात इन तीनों की मध्य अवस्था या प्रौढत्व किसी को नहीं रुचता आदि और अवसान सभी चाहते हैं। किसी उत्सव या तिहवार का आगमन या मध्य भाग बड़े ख़ुशी का होता है अन्त नहीं। अँगरेज़ी राज्य का आदि बड़े सुख का रहा प्रौढ़ता सब तरह दुखदायी हो रही है। सुहृद सरल चित्त मित्र के समागम का आदि और मध्य बड़ा सुखदायी है अन्त या बिछोहा शोक बढ़ाता है। गीता में भगवान् ने उत्तम उसी को ठहराया है जो आदि मध्य अवसान तीनों में सुखद हो, जिसका आदि और मध्य तो अच्छा हो पर परिणाम मे दुख मिले वह राजसी और तामसी है। आदि मध्य अवसान तीनों में जो एक से रहते हैं विमल ज्ञानियों मे वही हैं। आदि और मध्य चाहे जैसा रहा अन्त बना तो सब बना कहा जाता है।

जून, १९०६

———

जैसा उन्होने पता लगाया वैसा अब तक न किसी प्राचीन जाति को सूझा, न ऐसी आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर कोई आधुनिक सभ्य जाति पहुँची। दर्शन शास्त्रों की जुदी जुदी प्रक्रिया; सस्कृत सी लोकोत्तर परिष्कृत भाषा; सगीत, कविता आदि अनेक कौशल का आविष्कार और उनकी परमोन्नति की गई। (सिम्पिल लीविंग ऐण्ड हाई थॉट्स) साधारण जीवन और उत्कृष्ट विचार इन्ही आर्यो मे पाया गया। अब उस सभ्यता का अवसान है। पहले यावनिक-सभ्यता ने इसका दलन किया सब तरह पर इसे चूर चूर कर डाला अब विदेशी सभ्यता इसे पराभव देते हुये देश मे सब ओर अपना प्रकाश कर रही है। वैदिक सभ्यता का अवसान होने से उनके मूल आधार ब्राह्मण ब्राह्मत्व से च्युत हो गये, चातुर वर्ण्य तथा चार आश्रम की प्रथा छिन्न-भिन्न हो गई, सस्कृत का पठन-पाठन लुप्त प्राय हो कहीं कही थोडे से ब्राह्मणों ही मे रह गया। आधुनिक नूतन सभ्यता और शिक्षा जो इस समय अपनी प्रौढ अवस्था मे है उसका पहिला उद्देश्य यही हे कि जहाँ तक जल्द हो सकै ऊपर कहे मूल आधारो का कही नाम निशान भी न रहने पावे। जिस घराने मे दस पुश्त से अविच्छिन्न पठन पाठन संस्कृत का रहा आया और एक से एक दिग्गज पण्डित और ग्रन्थकार होते आये वहाँ अब अँगरेजी जा घुसी। उस कुल के विद्यमान वशधर अब ब्राह्मण बनने मे शरमाते हैं। अपने को पण्डित कहते वा लिखते रुकते हैं। मिस्टर वा बाबू कहने मे अपनी प्रतिष्ठा समझते है। कहीं कही तो यहाँ तक सस्कृत का लोप देखा जाता है कि उनके घर की पुरानी पुस्तके दीमक चाट गये। लडकों मे एक भी इस लायक न हुआ कि साल मे एक बार पुस्तको के बस्तों को खोलता और उन्हे उलट पुलट सौंत के रखता। नूतन सभ्यता यहाँ तक पाँव फैलाये हुये है कि वे जो पुराने क्रम पर हैं बेअक़िल समझे जाते हैं, सभ्य समाज मे उनकी हँसी होती है।

हम ऊपर कह आये है अवसान भी किसी किसी का सोहावना

यह लोक या परलोक सम्बन्धी जो कुछ काम करेगा उसमे पूरी तरह कृत कार्य होगा। स्थिर अध्यवसाय के साथ मनोनियोग के अभ्यासी के आगे विघ्न हवा मे धूलि के समान दूर उड़ा करते हैं। क्योंकि उसको तो अंगीकार्य के अन्त तक पहुँचने की बँधी है।

"विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धं उत्तम जनाम परित्यजन्ति"

जो मनुष्य में महत्व की बड़ी भारी पहचान निश्चय की गई है। योगियों मे योग और क्या हो सकता है यही स्थिर अध्यवसाय। हमारे पूर्वज ऋषिगण अपने स्थिर अध्यवसाय मे दृढ रह न जानिये कितनी लोकोत्तर अद्भुत बाते कर गुज़रे। आधुनिक शिक्षित मंडली मे विश्वामित्र ऐसे तपस्वियों के काम यदि निरी कल्पना और किस्सा माने जाँय तौ भी यह स्थिर अध्यवसाय और दृढ निश्चय का पूरा उदाहरण तो अवश्य कहा जायगा। आदमी मे दृढता होनी चाहिये तब वह क्या नही कर सकता? साथ ही इसके इतना अवश्य ध्यान रहे कि जिस बात के लिए वह उद्यत हुआ है वह अनुचित या गलत नहीं है। हम गलती मे न पड़े हो और अपने इरादे के मज़बूत और पक्के हों तो कभी मुमकिन नहीं कि कामयाबी न हासिल कर सके। हमारे पढ़ने वाले "स्माइल्स आन क्यरेक्टर", "क्रेक्स परसुट्स आफ नालेज" मे इसके अनेक उदाहरण पा सकते हैं। इतिहासों मे मुगल बादशाह बाबर ऐसे अनेक विजयी लोगों के उदाहरण पाये जाते हैं जिन्हें पढ कैसा ही दुर्बल चित्त और कम हिम्मती हो साबित क़दमी और दृढ़ता प्राप्त कर सकता है। एक बड़ा उत्तम उदाहरण स्थिर निश्चय का महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय के ग्यारहवे सर्ग मे दिया है। तपस्या से महादेव को प्रसन्न कर शस्त्र-विद्या प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले अर्जुन की परख करने को मुनि का भेष धरे आये हुये इन्द्र के प्रति अर्जुन ने कहा है—

"विच्छिन्नाभ्र विलापमिवविलीये नगमूर्द्धनि।
आराध्य वा सहस्त्राक्षमयशः शल्यमुद्धरे।"

२०—स्थिर अध्यवसाय या दृढ़ता

अनेक मानसिक शक्तियों मे अध्यवसाय या दृढ़ता भी मन की एक अद्भुत शक्ति है और मनुष्य के प्रशंसनीय गुणो मे उत्कृष्ट गुण है। यह दृढता स्वाभाविक होती है पर अधिकरतर विद्या, अभ्यास या कल्चर के द्वारा आती है। स्वाभाविक दृढचित्त को निस्सन्देह विद्या से बड़ा लाभ यह होता है कि वह विद्या का फल विवेक को काम में लाय बुराई की ओर अपने दृढ सकल्प को नहीं झुकने देता न दुःसग का असर उस पर व्यापता है। मूर्ख नासमझ का दृढ निश्चय हठ मे परिणित हो जाता है। हठीले का हठ कभी को अतीव भयकर होता है और यदि कही वह ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध हुआ, अर्थात् न वह पूर्ण विद्वान् हैं न निरा मूर्ख या जाहिल है, अधकच्चड़ा है,

जैक आफ आल ट्रेड मास्टर आफ नन।

ऐसे को तो भर्तृहरि लिखते हैं ब्रह्मा भी समझा के राह पर नही ला सकते तब मनुष्य किस गिनती मे है?

> अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः
> ज्ञानलव-दुर्विदग्धं ब्रह्मापितं नरं न रंजयाति॥

कही और ठौर तरोताज़गी पा सके मन की दृढता का यह एक दूसरा अनोखा दृष्टान्त है। जब यह बात है तो दृढ़चित्त वाले अपनी ऊँची समझ और ऊँचे ख़यालात से दुर्बल चित्त वाले को ऐसा अपने वश मे कर लेते हैं कि राजा अपनी चतुरंगिणी सेना साज कर भी वैसा जल्द लोगों को आधीन नहीं कर सकेगा। वक्ता के लिए चित्त की दृढ़ता बड़ी उपकारी है, दृढ मनवाला वक्ता मधुकर के समान ज्ञानी अज्ञानी प्रत्येक के मन में प्रवेश कर और प्रत्येक के मनोमुकुल का मधु निकाल निकाल जगत् को बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकता है। दृढ मन वाला

२१—महत्व

हमारे देश की वर्तमान् बिगड़ी दशा के अनुसार ख़ास कर इस अंगरेज़ी राज्य मे महत्व केवल धन मे आ टिका है पर बुद्धिमानो ने जैसा तय कर रक्खा है उससे सिद्ध होता है कि धन महत्व-संपादन का प्रधान अंग नहीं है वरन् उसका एक बहुत छोटा सा जुज़ है। कुल "खान दान" अलबत्ता वड़ा भारी अंग है इसलिये कि कुलीनों मे महान् बहुत अधिक होते आये हैं और हो भी सकते हैं। कुल मानो महत्व के इत्र बनाने की एक ज़मीन है जिस पर जैसा चाहो वैसा इत्र खींच ले सकते हो। जिस तरह का महत्व चाहते हैं वैसा इस कुलीनता की भूमिका पर संपादित हो सकता है। दूसरा अंग चरित्र है चरित्र पालन मे जो साव-धान हैं वे काल पाय महान क्या बल्कि महत्तर हो सकते हैं। तीसरा अग औदार्य है अनेक दोष-दूषित भी दान-शील देने वाला उदार चित्त हो तो उसके दोषों की उपेक्षा कर सबी उसके अनुयायी और प्रशंसा करने वाले होंगे।

> कि दातुरखिलैर्दोषैः किलुब्धस्याखिलैर्गुणैः।
> न लोभादधिको दोषो न दानादधिको गुणः॥

देने वाले में एक दातृत्व गुण के सिवाय सब दोष ही दोष हो उन दोषों से क्या और लोभी कदर्य सूम मे सब गुण ही गुण हों तो कदर्यता ऐसा भारी दोष है कि उसके गुणों की किसी को कदर नहीं होती तो निश्चय हुआ कि लोभ से अधिक कोई दूसरा दोष नहीं और देने से अधिक कोई गुण नहीं। और भी—

> "दोषा अपि गुणायन्ते दातारं समुपाश्रिताः
> कालिमानं शिलालम्ब्य कालमेघ इतिस्तुतिः"

हवा के झकोर से छिन्न-भिन्न हुये मेघ के समान मैं इसी पर्वत पर जहाँ तपस्या कर रहा हूँ, या तो विलाय जाऊँगा या इन्द्र को प्रसन्न कर उनसे अस्त्र शस्त्र पाय इस कलंक को दूर करूँगा कि युद्ध मे शत्रुओं से जुआ मे हारे हुए राज्य को न लौटा सका। और भी—

"वंशलक्ष्मीमनुद्धृत्य समुच्छेदेन विद्विषाम्
निर्वाणमपि मन्येहमन्तराय जयश्रियः"

शत्रुओ का नाश कर वश-परम्परा-प्राप्त राज्य लक्ष्मी को बिना पाये मोक्ष-सुख को भी मैं जय-श्री की प्राप्ति का एक विघ्न मानता हूँ। मोक्ष पद जो सबसे बढ कर है वह अर्जुन के दृढ निश्चय मे जय के मुकाविले तुच्छ था। तब ससार के क्षुद्र-सुखो की क्या गणना थी, इत्यादि कितने और भी उदाहरण इसके पाये जाते हैं।

अक्टूबर, १८९९

२२—मानना और मनाना

सुख दुःख का हम अभी वर्णन कर चुके हैं कि सुख क्या है और क्यों होता है ऐसा ही उसके जो विरुद्ध वह दुःख है। किन्तु इन दोनों सुख और दुःख का अकुर बीजरूप हो मनुष्यमात्र के चित्त रूपी थावले मे बोया जाता है और यह बीज अँकुराने पर मानना और मनाना इस नाम से प्रचलित होता है। सुख, दुःख क्या वरन् संसार के यावत् कारखाने सब इसी मानने मनाने पर हैं। प्रबल-इन्द्रिय-जन्य-ज्ञान से प्रेरित हो हम हरएक बातों को अपने अनुकूल या प्रतिकूल वैसा मान लेते हैं, वास्तव मे वे सब मान लेने की बाते हैं; असलियत उनकी कुछ नही है। मानने मे भी कितनी बातो को हम मनाये जाते हैं लाचार हो उन्हें उस तरह पर मानना पड़ता है। जैसा अपने स्वामी की आज्ञा हाकिम का हुक्म जीविका पाने की इच्छा से या सजा पाने की डर से मानना पड़ता है। कितनी बातो को कर्तव्य, कर्म, फर्ज-ड्यूटी-बान्ड या धर्म समझ हमे मानना पड़ता है। जैसा स्त्री को अपने पति की, शिष्य को गुरु की, पुत्र को माता पिता की आज्ञा मानना कर्तव्य कर्म में दाखिल है, इसलिये मानना ही पड़ता है। कभी कभी हमारे मानने मे भूल रहती है उसे भ्रम या भ्रान्ति कहते हैं, जैसा रसरी मे सर्प की भ्रान्ति, शुक्ति मे रजत की, मृगतृष्णा मे जल की इत्यादि।

विश्वास भी इसी मानने का दूसरा नाम है। कितने ऐसे सरल और सीधे जी के होते हैं कि उनके मन में दूसरे का कहना जल्द आ जाता है और उस पर विश्वास जम जाता है। हमारे देश मे ब्राह्मण इस विश्वास ही का बड़ा फायदा उठा रहे हैं। यहाँ की प्रजा को सीधी और अकुटिल समझ नरक और परलोक का अनेक भय दिखाय जैसा चाहा वैसा उनसे मनवाया। विश्वास बहुत

दाता का आसरा लै दोष भी गुण हो जाते हैं जैसा मेघ मे काला-पन भी काले मेघ ऐसा स्तुति-पत्त मे ग्रहण कर लिया जाता है। यश ससार मे चाहता हो तो दान शील हो। सिद्धान्त है "न दाने न बिना यशः"। दृढता, स्थिर निश्चय, निराकुलत्व, हर्ष-शोक मे एक भाव सब महत्व के चिन्ह हैं।

उदेति सविता रक्तो रक्त एवास्तमेतिच—
संपत्तौच विपत्तौच महतामेकरूपता"

सूर्य उदय के समय मे रक्त वर्ण होते हैं वैसा ही अस्त मे भी—तो निष्कर्ष यह हुआ कि बढ़ती और घटता दोनो मे एक सा रहना बड़प्पन की निशानी है। सब से बड़ा महत्व उसका है जो परोपकारी है जैसा बगाल मे विद्यासागर महाशय हो गये। नीचा काम, नीचे ख्याल की ओर जो कभी प्राणपण के साथ भी मन न दे सच्चा महत्व उसी का है। महत्व का निबहना सहज बात नहीं। अनेक बार की कसौटी मे कसे जाने पर जो असिधारावलेहन "तलवार की धार को जीभ से चाटना" रूप व्रत मे पक्का ठहरता है उसी को सर्व साधारण महान् की पदवी देते हैं। सब से सिरे का महत्व उसी का माना जायगा जो अपनी हानि सह कर भी देश के उद्धार मे लग रहा है। पर भारत मे इसकी बड़ी त्रुटि है। योरोप के प्रत्येक देशों की अपेक्षा यहाँ ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं। अपना स्वार्थ छोड़ परार्थ साधन करने वाले सत्पुरुष तो बिरले देश मे कोई एक दो हों या न हों। केवल अपना ही पेट न भर 'गेहूँ के साथ बथुआ सीच जाने' वाली कहावत की भाँत भी परार्थ साधक नही हैं। हाँ ऐसे अलबत्ता बहुत हैं जिनके बारे मे यह कहावत चरितार्थ होती है :—

"काकोपि जीवति चिराय बलिं च भुक्ते"—

अगस्त; १८६६

पाठक, अब आप अपनी कहिये आप किस श्रेणी मे नाम लिखाया चाहते हैं। अज्ञ तो आप हैं नही, ईश्वर करे अज्ञता आप के विरोधियों के हिस्से मे जा पड़े। मै तो यही समझता हूँ कि आप बहुज्ञ दूरदर्शी चतुर सयाने हो तो निश्चय मेरी बात का विश्वास आपको होगा। मेरे इस निवेदन को सर्वथा न झूठ मानोगे। मेरा पत्र इस समय बड़ी संकीर्ण दशा मे आ गया है वर्ष भी पूरा हो गया। विशेष सहायता इस दुर्भिक्ष के समय नहीं दे सकते तो अपना अपना मूल्य तो कृपा कर भेज मुझे उपकृत और बाधित कीजिये। निश्चय मानिये केवल संकीर्णता है जिससे मै प्रतिमास ठीक समय पर आप से नही मिल सकता। आप बुद्धिमानो की कोटि के हं या उससे इतर वाली कोटि के, इसमे आपकी परख भी भरपूर है।

यह मानना ही है जिससे ईश्वर की ईश्वरता कायम है नहीं तो ईश्वरता के अनेक अनर्गल गड़बड़ काम देख जिससे पग पग मे विभ्रम भाव और निर्घृणता प्रगट हो रही है कौन ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास करता। कहाँ तक कहे मान लेने पर संसार के यावत् काम आ लगे हैं "मानो तो देव नहीं पत्थर" मानना यह अद्भुत ईश्वरीय शक्ति न होती और किसी का कोई विश्वास न करता तो यह जनाकीर्ण-जगत् जीर्ण-अरण्य-सा हो जाता। यदि मानना और मनाना यह दोनों बातें संसार से निकाल ली जाँय तो इस नश्वर जगत् मे कौन सा आनन्द बच रहा जिसकी लालच से सब तरह की झौंझट और अनेक प्रकार की ऊँची नीची दशा भोग भाग भी जीने से लोग नहीं ऊबते। सच तो यों है कि मानने का भाव उठा दिया जाय तो यह दुनिया रहने लायक न रह जाय। हमें लोग प्रामाणिक महात्मा बुजुर्ग मानें और उदाहरण में रक्खें इसीलिये चरित्र संशोधन किया जाता है। बुद्धिमान मनुष्य सब तरह का क्लेश सहकर भी चरित्र मे दाग नहीं लगने देते। हम नेक नाम रहैं और सब कोई हमें मानें इसीलिये राजा प्रजा पर अन्याय करने से अपने को बचाता है, धनवान् गरीबों को सहारा देते

कुछ अज्ञता और मूर्खता पर निर्भर रहता है इसलिए हाल के ज़माने के चालाक ब्राह्मणों ने पहले प्रजा को पढ़ने से रोका, वेद उनसे छिपाया और देश भर को मूर्ख कर डाला तब जैसा चाहा वैसा उनके मन में विश्वास जमा दिया। ईश्वरीय नियम है, जो दूसरे की बुराई चाहेगा उसकी पहले बुराई होगी; प्रजा को मूर्ख और अज्ञ कर देने की चेष्टा करते करते आप स्वयं मूर्ख हो गये। अब इस समय जब कि अँगरेज़ी तालीम ने विश्वास की जड़ हिला डाला है लोग पढ़ पढ कर सचेत हो जाते हैं और इनके चंगुल से निकलते जाते हैं पर ये वही मोची के मोची रहा चाहते हैं। कितना ही कहो हजार हजार फिकिर करो ये उस अज्ञता के कीचड़ के बाहर न होंगे, दच्छिणा के लोभ से उसी में सौंदे पड़े रहेंगे।

मनवाना केवल अज्ञ ही के लिए सहज नहीं है किंच बहुज्ञ को भी मनवाय देना सहज है किन्तु वे जो अधकचड़े हैं जिन्हे ज्ञान, लव, दुर्विदग्ध की पदवी दी गई है उनके जी मे विश्वास दिलाना महा दुष्कर है। इसी मूल पर भर्तृहर के ये कई एक श्लोक हैं—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तंनरं न रंजयति॥
लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्।
पिवेच्चमृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः॥
कदाचिदपिपर्यटन् शशविषाणमासादयेन्नतु।
प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥ इत्यादि।

इसी से यह भी कहा गया है कि या तो वे सुखी हैं जो सर्वथा अज्ञ हैं या वे जो सब भाँति पारंगत हैं पर वे जो न तो मूर्ख हैं न सर्वज्ञ हैं अधकचड़े हैं, क्लेश उठाते हैं—

यश्चमूढतमो लोके यश्चबुद्धेः परंगतः।
द्वाविमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

२३—काम और नाम दोनों साथ साथ चलते हैं

नाम के क़ायम रखने को आदमी न जानिये क्या क्या काम करता है। लोग कुआँ खुदाते हैं। बावली बनवाते हैं। बाग़ लगाते हैं। मोहफ़िल सजाते हैं। क्षेत्र और सदाव्रत चलाते हैं। नाम ही के लिये लोग लाखों लुटाते हैं। स्कूल पाठशाला तथा अस्पताल क़ायम करते हैं। इस तरह पर काम और नाम दोनो का बराबर साथ निभता चला जाता है। सच कहो तो इस असार संसार मे जन्म पाय ऐसा ही काम कर चलै जिसमे नाम बना रहे जिनका नाम बना रहता है वे मानों सदा जीते ही रहते हैं। जिस काम से नाम न हुआ वह काम ही व्यर्थ है। काम भी दो तरह के होते हैं, नेक और बद। नेक काम से आदमी नेक नाम होता है, प्रातः स्मरणीय होता, पुण्य-श्लोक कहलाता है। बद नाम से बदनाम होता है उसका नाम लेते लोग घिनाते हैं। गालियाँ देते हैं। नाक और भौ सिकोड़ने लगते हैं—

कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः,

पुण्य श्लोक यथा

पुण्यश्लोको नलोराजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः॥
कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्यच।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं पाप नाशनम्॥

इत्यादि नेकनामी के अनेक उदाहरण हैं। केवल अपने अपने काम ही से लोग नेकनाम हो गये। रणजीत सिंह, शिवा जी प्रभृति शूरवीर, विद्यासागर सरीखे देश हितैषी, लार्ड रिपन से शासनकर्ता, शेक्सपियर, मिलटन, कालिदास आदि कवि सब अपने अपने काम ही से हम लोगों के बीच मानों जी रहे हैं और आ-चन्द्रतारक जीते रहेंगे। काम के

है, सबल निर्बल को बचाता है, गुरु शिष्य को पढ़ाता है ऊँच नीच का मान रखता है, इत्यादि। स्वार्थ-वश प्रेम तथा द्रोह सभी करते हैं पर निस्वार्थ-प्रेम का भाव केवल मानने ही के कारण से है। इस तरह पर इस मानने मनाने के भाव को जितना चाहिये पल्लवित कर सकते हैं हमने केवल दिक् प्रदर्शन मात्र किया है।

अगस्त; १८९६

"पढ़े लिखे ओनवौ नहीं नाम महम्मद फाज़िल"

चार वेद की कौन कहे चार अक्षर से भी भेट नहीं है कोरे लण्ठदास पर कहलाने को द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी। इसी तरह इस साल वर्षा और खेती मे उपज बराय नाम को है। दिवालदार रोजगारियों मे इमानदारी बराय नाम है। अँगरेज़ और हिन्दुस्तानियों के मुकाबिले हाकिमों को इन्साफ बराय नाम है। कितनो का नाम दाम के कारन, नाम के लायक कोई काम उनसे न भी बन पड़ा हो तो भी दाम ऐसी चीज है कि उनका नाम लेना कैसा वरन् खुशामद करनी पड़ती है। ऊषर की वर्षा समान गोधनदास, तिनकौड़ीमल, चिथरूदास के नामो मे कौन सी खूबसूरती है। इत्तिफाक से ऐसों के पास बहुत सा रुपया जुड़ गया न आप पेट भर खाता है न दूसरों को खाते पहनते देख सकता है न उस रुपये से यह लोक पर लोक का कोई काम निकलता है। समाज मे यहाँ तक मनहूस समझा गया है कि सवेरे भूल से कहीं जबान पर आ जाय तो दिन का दिन नष्ट जाय। ऐसों से सरोकार केवल दाम ही के कारन लोग रखते हैं और हाजत रफा करने की भाँति उसके पास जाना पड़ता है इत्यादि, काम और नाम का विवरण पढ़ने वालों के चित्त विनोदार्थ यहाँ पर लिखा गया। अन्त मे इतना और विशेष वक्तव्य है कि काम और नाम दोनों का साथ दाम पल्ले रहने से अच्छा निभ सकता है अर्थात् दाम वाला चाहे तो अपने कामों से नाम पैदा करना उसके लिये जैसा सहज है वैसा औरों के लिये नहीं है।

जुलाई; १८९६

ज़रिये नाम क़ायम रखने के तरीकों मे किसी ठठोल ने एक यह तरीका भी लिखा है।

घटं भिन्द्यात्पटं छिन्द्याद्गर्दभारोहणं चरेत्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरुषो भवेत् ॥

घड़े फोड़ डालै, कपड़े फाड़ डालै, गदहे पर सवार होकर चलै किसी न किसी तरह मनुष्य नाम हासिल करै। कितने हलाकू, चगेज़, नादिर से जगत शत्रु ऐसे भी हो गये हैं जिनके काम की चर्चा सुन गर्भवती के गर्भ गिर पड़ते हैं। कितने नाम के लिए मर मिटते हैं— जग मे मुँह उजला रहे, बात न जाय, कोई नाम न रक्खे, एक की जगह चाहे दस लुटै पर ऐसा काम न बन पड़े कि सब लोग हँसै। नाम रखते हैं, नाम करते हैं, नाम धरते हैं, नाम धराते हैं, नाम पड़ता है, नाम चलता है, इत्यादि अनेक मुहाबिरे नाम के हमारी रोज़मर्रे की बात चीत मे कहे सुने जाते हैं पर इन सबों मे नाम का काम ही की तरफ इशारा रहता है। ईश्वर न करै बुरे कामों के लिये किसी का नाम निकल पड़ै। दूसरा भी कोई बुरा काम करै तौ भी "नरक पड़ै को चन्दू चाचा" समाज मे उसी की तरफ सबो की ओर से अंगुश्त-नुमाई की जायगी, जा बुरे कामो के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। पुलिस भी उसी को तके रहेगी मैजिस्ट्रेट साहब जुदा उसकी खोज मे रहेंगे। योंही भले काम के लिये नाम निकल गया तो चाहो दूसरा भी कोई वैसा ही काम करै किन्तु देशी परदेशियों मे नाम उसी का लिया जायगा "कटै सिपाही, नाम सरदार का", "नामी शाह कमा खाय, नामी चोर मारा जाय" जो बात बिना उस तरह के काम के होती हैं वह बराय नाम को कही जाती हैं जैसा ईसाई मत के मानने वालों मे ईसा पर विश्वास बराय नाम को है। इन दिनों के सभ्यों में सच्ची सभ्यता बराय नाम को है। मेनचेस्टर के बने कपड़ों के आगे देशी कपड़ो की कदर बराय नाम को है। इस समय के ब्राह्मणों मे द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि उपाधि बराय नाम है—

उससे बढ़ के कोई सुख हई ।नहीं इत्यादि। जिस वस्तु को हम दुःखद मान उससे घिनाते हैं वह भी प्रकृति के नियम अनुसार ईश्वर की सृष्टि मे बड़े ही काम की है। तो निश्चय हुआ वास्तव में सुख दुःख का अस्तित्व कल्पित है। हमारा मन जिस भावना से जिसे ग्रहण करता है उसी भावना का नाम सुख अथवा दुःख है। गभीर बुद्धि वाले विचारवान् का यह काम न समझा जायगा कि थोड़ा सा भी अपने प्रतिकूल होने से विकल हो धैर्य को पास फटकने का अवसर न देना और उस व्याकुली मे भाग्य, अदृष्ट और ईश्वर पर समस्त दोष आरोपित कर देना। यदि अदृष्ट या ईश्वर का यह सब दोष ठहराया जाय तो उसके प्राकृतिक नियम किस लिये रक्खे गये हैं। प्रकृति के अनुकूल जो कुछ है वह कभी दुःख का हेतु होगा ही नही—वरन् प्रकृति देवी की विश्व-विमोहिनी अपरिमित व्यापकता मे सब कुछ समीचीन और अच्छा ही अच्छा है। ईश्वर की सृष्टि मे निष्प्रयोजन तो कुछ हई नहीं, न कोई काम या घटना निष्प्रयोजन होती है। ज्ञानातीत होने से उसका भेद या मर्म हमारी ओछी बुद्धि में नहीं आता तो यह हमारी ही अल्पज्ञता का दोष है। ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् आदि लड़ी के लड़ी विशेषण युक्त अपना प्रभु, उत्पादन पालन और संहारकर्ता मान उसे दोष लगाना कैसी अदूर-दर्शिता और मूर्खता है। इससे सुख दुःख में समभाव का होना ही परम सुख या सच्चा सुख है; योग सिद्धि का प्रधान अंग, शान्ति लाभ का एकमात्र सहायक और स्थिर धी का मुख्य लक्षण है—

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधःस्थिरधीर्मुनिरुच्यते" ॥

यह सुख दुःख की दशा महामना, उदार चेता बड़े लोगों के पहिचान की एक कसौटी है—

"संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥"

२४-सुख दुःख का अलग अलग विवेचन

बुद्धिमानों ने सुख-दुःख का निर्णय इस तरह पर किया है कि जो अपने को अनुकूल वेदनीय वह सुख है और जो प्रतिकूल वेदनीय हो वह दुःख है। एक ही वस्तु एक को दुःख का कारण होती है इस लिये कि वह सब भाँति उसके अनुकूल है; वही दूसरे को दुखदायी हो जाती है क्योंकि वह सब तरह पर उसके प्रतिकूल पड़ती है। प्राणीमात्र को एक ही वस्तु या एक ही विषय सुखद और दुःखद नहीं होते। माघ कवि ने कहा भी है :—

"भिन्नरुचिर्हि लोकः"

इत्र जो हम लोगों को अत्यन्त प्राणतर्पण और मस्तिष्क को ताक़त पहुँचाने वाला है गोबरैले को सुँघाने से वह मर जाता है। हम गृहस्थों को विषयास्वाद सुख का हेतु और जन्म का साफल्य है वेही विरक्त बीतराग को उसमे हेय बुद्धि और जैसे हो सके उसका त्याग सुख और शान्ति का हेतु है। आलसी सुस्त बेकाम पड़े रहने ही को सुख समझता है परिश्रम शील उद्योगी परिश्रम ही को सुख मानता है। उदार चेता को खाने खिलाने और किसी को अपने पास का चार पैसा दे देने मे असीम सुख मिलता है। वही बद्धमुष्टि कंजूसकदर्य की समझ मे जो सुख की अन्तिम सीमा हाव-हाव कर रुपया बटोरने मे है वह इन्द्र के अर्द्धासन के मिलने में भी कदाचित् न होगी। खेलाड़ी आलसी लड़का पढना महा दुःखदायी मानता है वही विनीत, परिश्रमी, विद्यानुरागी नई-नई पुस्तकें और टटके से टटके लेख पढने मे अपने आनन्द का उत्कर्ष और दिल-बहलाव का एक मात्र वसीला मानता है। डरपांक -कायर के लिये रण क्षेत्र भय का स्थान है वही युद्धोत्साही वीर के लिये

२५—कष्टात्कष्टतरं क्षुधा

शरीर मे भाँति-भाँति के रोग दोष का होना; धन-रहित हो एक-एक पैसे के लिये तरसना; बन्धु-बान्धव प्रेमी जनों की जुदाई का दुःसह दुःख आदि अनेक कष्ट मनुष्य जीवन मे आ पड़ते हैं किन्तु हाय पेट की आग का बुझना इससे बढ़ कर कोई क्लेश नही है। और-और दुःख लोग बहुत कुछ रोने गाने और सन्ताप के उपरान्त किसी न किसी तरह बरदाश्त कर अन्त को चुप हो बैठ रहते हैं पर भूख का क्लेश नहीं बरदाश्त होता। जठराग्नि के लिये इन्धन सम्पादन का ऐसा भारी बन्धन है जिसमें जीव मात्र बँधे हुए भोर को खाट से उठते ही साँझ लौं इसी की चिन्ता मे व्यग्र इतस्ततः धावमान् किसी न किसी तरह अपना पेट पालते ही तो हैं। अस्तु, और-और समय तुरन्त पूरा इस उदर दरी का पाटना इतना करा चाहे न भी रहा हो जैसा अब हो रहा है; किन्तु अनेक बार की गाई हुई गीत का फिर-फिर गाना व्यर्थ और नितान्त अरोचक होगा। योगी जन यत्न और अभ्यास से उन-उन इन्द्रियों को जिन्हें काबू में लाना अतीव दुर्घट है अन्त को अपने आधीन करी तो लेते हैं पर इस जठराग्नि के ऊपर उनका कुछ वश नहीं चलता। बे-वश उन्हें भी इसके लिये चिन्ता करनी ही पड़ती है। शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचना चातुरी के एकमात्र परमचार्य कविवर गोवर्द्धन अपनी 'गोवर्द्धन सप्तशती' में ऐसा लिख भी गये हैं—

> "एकः स एव जीवति हृदयविहीनोपि सहृदयो राहुः।
> यःसर्वंत्रविमकारणमुदरं न विभर्ति दुष्पूरम्" ॥

जीवन एक राहु का सफल है, जो केवल शिरोभाग होने से हृदय शून्य होकर भी सहृदय चतुर या सरस हृदय वाला है इसलिए कि

सुख और सम्पत्ति की दशा मे बड़े लोगो का चित्त उत्पल जो अत्यन्त कोमल होता है तत्सदृश मुलायम हो जाता है; अत्यन्त विनीत और नम्र हो झुकने लगते हैं। वही जो ओछे, छोटे, सकीर्ण हृदय हैं वे अभिमान मे फूल बड़े कट्टर हो झुकना जानते ही नहीं—विपद्ग्रस्त दुःखित दशा मे बड़े लोग धैर्य धर पत्थर से कड़े दिल बने रहते हैं; जो क्षुद्र हृदय हैं धीरज छोड गिड़गिड़ाने लगते है।

नवम्बर, १९००

अपनी हेठी सहना किसी को गॅवारा नहीं होता। दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रजा में अनेक आधि-व्याधि, प्लेग और मरी से सब ओर उदासी और नहूसत का पूरा रंग जम रहा है। चहूँ ओर दरिद्रता का जहाँ साम्राज्य फैला हुआ है वहाँ विलाइत की नई-नई नफासत और भाँति-भाँति की चटकीली, मन को लुभाने वाली कारीगरी जो कुछ बच रहा; उसे भी ढोये लिये जाती है। क्षुधा को कष्टात्कष्टतर लिखने वाले इस समय होते तो न जानिये कितना पछताते क्या तअज्जुब सिर धुनने लगते। किन्तु दैवी-रचना बड़ी ही अद्भुत है, कुदरत के खेल का कौन पार पा सकता है इतने पर भी मोह का जाल ऐसा फैला हुआ है कि पढ़, अपढ़, ज्ञानी, मानी सभी उसमे फॅसे हुये हैं। क्षुधा के इस अपरिहार्य कष्ट से बचने की कौन कहे जान बूझ हम सब लोग उसमें अपने को छोड़ते जाते हैं। कितने हैं जिन्हे पेट भर अन्न खाने को नहीं मिलता सुख पूर्वक रहने को स्थान भी नही है तब जिन्दगी की और लज्जतें और आराम की कौन कहे पर नरक से परित्राण पाने का पुत्र का पैदा होना जरूरी बात मान रहे हैं—

"पुमान्नोनरकात् त्रायते इति पुत्रः"

क्या कुआँ की भाग है हम नहीं जानते इन गीदड़ों की सृष्टि से, क्या नरक से उद्धार होता है। नरक से उद्धार इस अदृष्टवाद को कौन जानता है, किसी की चिट्ठी तो आई नहीं पर इन गीदड़ों की सृष्टि यहाँ घोर नरक में हमे अलबत्ता गेरती है। जिसमें औलाद बढ़े इसलिये पुत्र का अर्थ नरक से उद्धार करने वाला तब के लिये था जब देश का देश एक कोने से दूसरे तक सूना और खाली पड़ा था और उसे आबाद करना पुराने आर्यों को मंजूर था। अब तो मनु का यह श्लोक हमारे वास्ते उपयुक्त है—

"चतुर्णामपि भ्रातृणामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्।
तेन पुत्रेण सर्वे ते पुत्रिणो मनुरब्रवीत्" ॥

यावत् हलकाई का एकमात्र कारण उदर अपने मे नही रखता। भागवत मे व्यासदेव महाराज ने धनियों पर आक्षेप करते हुए लिखा है—

"कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्"

कवि और बुध जन-धन के मद मे अन्धे धनियों की सेवा क्यों करते हैं और अपना अपमान उनसे क्यों कराते हैं? अपने इस दग्धोदर के भर लेने को सागपात और बन के फल फूल क्या उच्छिन्न हो गये हैं। पर वह समय अब कहाँ रहा जब कि सन्तोष की शान्ति मूर्ति का प्रकाश एक एक आदमी पर झलक रहा था, गाम्भीर्य और उदार भाव का सब ओर विस्तार था; हवस और तृष्णा-पिशाची का सर्वथा लोप था, किसी को किसी तरह की सकीर्णता और किसी वस्तु का अभाव न था; वैसे समय मे भी क्षुधा का क्लेश इतना असह्य था कि लिखने वाले ने इसे "कष्टात्कष्टतर" कहा – न कि अब इस समय जब कि कौड़ी और मुहर का फर्क़ आ लगा है। उस समय लोग स्वभाव ही से सन्तुष्ट, सहनशील, सब भाँति आसूदा, चचल मन और इन्द्रियों को अपने वश मे किये हुये थे। देश ऐसा रँजा-पुँजा था कि चारो ओर आनन्द-वधाई वज रही थी। नई-नई ईजादों से हवस इस कदर नहीं बढ़ी थी; किसी को किसी चीज़ की हाजत न थी तब नई ईजाद क्यों की जाती? वही अब इस समय देखा जाता है कि लोगों में तृष्णा का क्षय किसी तरह होता ही नही, सन्तोष को किसी कोने मे भी कहीं स्थान नहीं मिलता; "मन नहि सिन्धु समाय" इस वाक्य की चरितार्थता इन्हीं दिनों देखी जाती है। चंचल इन्द्रियों को दवा कर विषय-वासना से परहेज करने वाले या तो दम्भ की मूर्ति होंगे नही तो वे ही होंगे जिनमें शाइस्तगी या सभ्यता ने अपना प्रकाश नहीं किया। परस्पर की स्पर्द्धा या डाह ने यहाँ तक पाँव फैला रक्खा है कि लोगों को हवस की कटीली झाड़ी मे झोंके देती है। उदारभाव संकुचित हो न जानिये किस गुफा मे जा छिपा, दूसरे के मुक़ाबिले ज़रा भी अपनी हानि या

मिलती थी वहाँ लोग मौन साधे बसना बिछाये हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं; केवल व्याज की या गाँव की आमदनी से अमीरी ठाठ बाँधे हुये हैं। तात्पर्य यह कि कोई दूसरा उद्यम न रहा सिवाय खेती की उपज के जो हमारी निज की भोग्य वस्तु है उसे दूसरे को दे जब हम उसका मूल्य लेंगे तो हमारे निज के भोजन में तो कसर पड़ती ही रहेगी। इसका विचार यहाँ पर छोड़े ही देते हैं कि, वही उपज जिसे हम कच्चा बाना (रॉ मिटीरियल) कहेंगे हम से खरीद विलायत वाले अपनी बुद्धि-कौशल से बदले में हम से चौगुना कभी को अठगुना वसूल करते हैं और हम उन उन पदार्थों की चमक-दमक तथा स्वच्छता पर रीझ खुशी से दिये देते हैं देश को निर्धन और दरिद्र किये डालते है। जैसा हमारे यहाँ हजार पति और लाख पति रईसों में अग्रगण्य और माननीय होते हैं वैसा ही अमेरिका, जर्मनी, इगलैंड आदि देशों में करोड़पति हैं; लाख दो लाख का धनी तो वहाँ किसी गिनती में नहीं हैं। उन लोगों ने अलबत्ता कभी कान से भी न सुना होगा कि भूख का कष्ट भी कोई कष्ट है। यहाँ पुत्र नरक से उद्धार का द्वारा हो श्वान समूह को इतना बेहद बढा दिया कि पेट पालन भी दुर्घट हो गया। हमारे पढ़ने वाले हमें चाहे जो समझें हमें चाहे जैसी हिकारत की नजर से खयाल करैं हम कहेंगे यही कि देश की इस वर्तमान दशा में हम लोगों की सृष्टि का बढना जीते ही नारकीय यातनाओं का स्वाद चखना है। हम नहीं जानते कहाँ तक इनका पौरुषेय-विहीन-श्वान दल बढता जायगा जिसमें गर्मी कहीं नाम को नहीं बच रही। सच माघ कवि ने कहा है:—

"पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्था एवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः"

रास्ते की धूलि भी पाँव से ताड़ित हो सिर पर चढ़ती है, जिससे प्रगट है कि अपना अपमान ऐसा बुरा है कि ऐसी तुच्छ वस्तु धूलि भी नहीं उसे सह सकती और सिर पर चढ अपमान का बदला चुकाना

चार भाइयों में एक के भी सिंह-शावक सा पुत्र जन्मै तो उसी से वे चारों पुत्रवान् हैं। सच तो है मुर्दादिल, सब भाँत गये बीते, निरे निकम्मे, गीदड़ की सी प्रकृति वाले, अब इस समय हम लोगों की औलाद बढ के क्या होगी? सियार के कभी सिंह पैदा हो सर्वथा असम्भव है। इनका अधिक बढना केवल ऊपर का वाक्य कष्टात्कष्टतरं-क्षुधा को पुष्ट करने के लिये है। देश में क्षुधा का क्लेश जो दिन दिन बढ़ रहा है उसमे सामयिक शासन-प्रणाली की भाँत-भाँत की कड़ाई के अतिरिक्त एक यह भी है कि बाल्य-विवाह आदि अनेक कुरीतियों की बदौलत हम लोगों की निकम्मी सृष्टि अत्यन्त बढती जाती है जिनमे सिंह के छौनों का सा पुरुषार्थ कहीं छू नहीं गया। पूर्व सञ्चित सब शत-छिद्र-घट में पानी के समान निकला जाता है देश में पुरुषार्थ के अभाव से नया धन आता नहीं; परिणाम जिसका भूख का क्लेश बढाने के सिवाय और क्या हो सकता है? धन इस तरह क्षीण होता जाता है धरती की शक्ति अल्प हो जाने से पैदावरी औसत से उतनी नहीं होती जितनी आबादी मुल्क की बढ रही है। एक साल किसी एक प्रान्त मे भी अवर्षण हुआ तो उसका असर देश भर में छा जाता है। माना पहले की अपेक्षा धरती अब बहुत अधिक जोती बोई जाती है किन्तु उत्पादिका-शक्ति कम होने से खेती की अधिकाई का कोई विशेष लाभ न रहा। अस्तु, सो भी सही यहाँ की पैदावार यहीं रहती बाहर के दूर देशों मे न जाती तब भी सस्ती रहती अन्न का कष्ट न उठाना पडता। सो भी नहीं है देश मे धन आने का कोई दूसरा द्वारा न रहा सिवाय पृथ्वी की उपज के वह उपज बाहर न जाय तो बड़े बड़े फर्म और महाजनों की कोठियों में भी जहाँ लाख और करोड़ की गिनती है एक पैसा न दिखलाई दे। कल-कत्ता और बम्बई ऐसे दो एक शहरों को छोड़ देश भर में बड़े बड़े रोज़गारी जिनके घर रुपयों की झनझनाहट छाई रहती थी उदासी छाई हुई है; जिनके चलते काम में किसी को पानी पीने की फुरसत नहीं

२६—वायु

जगदीश जगदाधार पाँच तत्वों में वायु जो सबों में प्रधान है हमारे शरीर मे सन्निवेशित कर हमे प्राणवान् किये हैं। वायु पाँचों तत्वों में प्रधान है। इसके प्रमाण में तैत्तरीय उपनिषद् की यह श्रुति है :—

"तस्मादेतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूत आकाशाद्
वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी।"

"उस परमात्मा की सत्ता से पहले आकाश हुआ आकाश से वायु वायु से अग्नि अग्नि से जल जल से पृथिवी हुई। अग्नि वायु जल इन तीनों मे वायु सबों में प्रधान है। शरीर के एक एक अवयव हाथ पाँव नाक कान आँख इत्यादि में किसी एक के न रहने से भी हम जी सकते हैं। पर शरीर मे वायु न रहे तो न जियेंगे। हमारे हाथ पाँव रस और मास तथा मेदा के बने हैं। विशेष कर जल और पृथिवी इन्ही दो तत्वों से इनका निर्माण है, ये न भी हो तो मनुष्य लूला और लँगड़ा हो जी सकता है। ऐसा ही हमारे दोनों नेत्र तैजस पदार्थ हैं न भी हों तो हम अन्धे हो जीते रहेंगे किन्तु एक मिनट भी मुँह और नाक बन्द कर वायु का गमनागमन बन्द कर दिया जाय तो तत्क्षण हम मूर्छित हो जायगे। प्राणी मात्र के लिये वायु तो जीवन हई है वरन् उद्भिज पेड़ पालव भी हवा न लगने से हरे भरे नहीं रह सकते।

वायु क्या पदार्थ है उसे हम नेत्र से नहीं देख सकते किन्तु विचित्र शक्ति अद्भुत कल्पनाशाली सर्वेश्वर उसके ज्ञान के लिये त्वगिन्द्रिय हमें दी है और किसी दूसरी इन्द्रिय से वायु को हम प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। नैयायिकों के मत के अनुसार शब्द और स्पर्श यह दो इसके विषय हैं। दार्शनिकों ने शब्द गुण आकाश माना है।

चाहती है। कवि कहता है धूलि "खाक" को भी जब इतना शान है तो उस मनुष्य से धूलि ही भली जो अपमान सहकर भी निर्विकार जैसे का तैसा बना रहता है। इतना ही होता तो इनकी यह दशा क्यों होती कि इस समय भूमण्डल पर कोई जाति नहीं है जो इतने दिनों तक अपमान कैसा वरन् गुलामी की हालत मे धौल खाते खाते जन्म का जन्म बीत गया और चेत न आई सिर नीचा किये सबर को अपना दीक्षा-गुरू मान सब सहते चले जाते हैं। जिन्हे गुलामी झेलते न जानिये कितनी शताब्दी बीत गई जो इनकी नस नस मे व्याप्त हो गई इसी से सेवकाई का काम ये बहुत अच्छा जानते हैं और अपनी स्वामि-भक्ति के बड़े अभिमानी भी हैं। मालिक बनना न इन्हे आता है न स्वामित्व की जितनी बात और जितने गुण हैं वे इनके मन में धँसते हैं न आकल्पान्त इनके सुधरने की कोई आशा पाई जाती है। केवल दास्य-भाव होता तो कदाचित् मिट जाता और फिर से इनमें नवजीवन आ जाता। पुराने ब्रिटन्स चार सौ वर्ष लों रोमन्स लोगों की गुलामी के बाद फिर जो क्रम क्रम से स्वच्छन्द होने लगे तो कहाँ तक उन्नति के शिखर पर चढ़े कि अब इस भूमण्डल पर उसके समान कोई जाति नही है और इंगलैंड इस समय सब का शिरोमणि हो रहा है। पर यहाँ तो दूसरा कोढ इनके साथ परिवर्तन विमुखता का लग रहा है। मनु के समय जो दो पहिये का छकड़ा निकला उसमे फिर अब तक कुछ अदल बदल न हुई। शायद इसके बराबर का ऐसा ही कोई दूसरा पाप होगा कि बाप दादा के समय की प्रचलित रिवाज मे परिवर्तन किया जाय। जो कुछ दोष उसमे आ गया है उसे मिटाय संशोधन करना मानों अपने लिये नरक का रास्ता साफ़ करना है, उसका यह लोक-परलोक दोनों गया दाखिल समझो इत्यादि बातों का खयाल कर क्षुधा को कष्टात्कष्टतर कहना हिन्दुस्तान के लिये सब भाँति सत्य और उचित मालूम होता है।

मई, १९०३

करता है।' उसी राशि चक्र में बंधे हुये सूर्यादिग्रह अपनी अपनी नियमित कक्षा पर नियमित चाल से चला करते हैं।

"भूचक्रं ध्रुवयोर्बद्ध माक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्यात्यजस्त्रं तन्नद्धाग्रहकक्षा यथा क्रमः" ॥

सिद्धान्त शिरोमणि मे लिखा है पृथिवी के बाहर बारह योजन तक जो वायु है उसी मे मेघ और विद्युत् रहते हैं उपरान्त प्रवह नाम का वायु है और उसकी गति सदा पश्चिमाभिमुख रहती है उसी मे ग्रह और नक्षत्र सब हैं। वामन पुराण में सात प्रकार का वायु लिखा है वही मरुत् के गण हैं। जिनके नाम ये हैं प्रवह, निवह, उद्वह, संवह, विवह, प्रवह, परिवह। इन्द्र ने इन सातों वायु का आकाश मे पथविभाग निश्चित कर दिया है। पुराण मे वेही मरुत् के गण कहे गये हैं। ये मरुद्गण क्या हैं सो फिर कभी लिखेंगे।

मछली आदि जल-चर जन्तु जिस तरह अनन्त अगाध समुद्र मे रहते हैं वैसे ही हम विपुल वसुन्धरा के ऊपर इसी विशाल वायु-सागर मे रहते हैं। मृदु-मन्द-गामी समीरन वृक्षों के पत्तों को कँपाता थके मान्दे मनुष्य को शीतल और पुलकित गात्र करता हुआ चलता है तब हम उसकी गति का अनुमान करते हैं किन्तु प्रत्यक्ष नही कर सकते कि वायु क्या पदार्थ है? जब यह घोर गम्भीर गर्जन से दिग्मण्डल को पूरित करता अपने प्रवल आघात से ऊँचे ऊँचे पेड़ो को उखाड़ डालता है उस समय हम वायु के केवल अस्तित्व मात्र से नहीं वरन् इसकी असाधारण शक्ति से परिचित होते हैं। संस्कृत दर्शनकार शब्द गुण आकाश मान गये हैं किन्तु यूरोप के विज्ञान-वेत्ताओं ने परीक्षा द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि शब्द आकाश का गुण नहीं है किन्तु शब्द भी वायु का गुण है। एक बोतल जिसकी हवा वायु-निष्काशन-यन्त्र द्वारा निकाल ली गई हो उसमे कंकड़ भर हिलाओ तो शब्द न होगा। इससे यह बात स्पष्ट है कि बोतल के भीतर आकाश के होते भी जो शब्द नहीं होता तो शब्द वायु का गुण है।

केवल इतना ही नहीं कि वायु जगत् का प्राण प्रद है; अमर में "जगत्प्राण समीरणः" ऐसा वायु का नाम लिखा है अपिच इसमे और अनेक गुण हैं। यह ओदे को सूखा कर देता है, उत्तम गन्ध वहन कर घ्राण इन्द्रिय को तृप्त करता है "सुरभिर्घ्राणतर्पणः" यह सुगन्धि का नाम वायु ही के कारण पड़ा है। इस भूपृष्ठ पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ वायु न हो, अतल स्पर्श सागर, अन्धकार पूरित शून्य गुफा, अत्युच्च पर्वत शृङ्ग सब ठौर इस का अस्तित्व है। भूपृष्ठ से चालीस मील ऊपर तक वायु का संचार अच्छी तरह अनुभव किया गया है। ज्यों ज्यों ऊँचे स्थान में जाइये त्यों त्यों वायु पतला होता जायगा यहाँ तक कि बहुत ऊँचे स्थान मे जैसा हिमालय के अत्युच्च शिखर पर इतनी कम हवा है कि हम वहाँ श्वास नही ले सकते। सूर्य सिद्धान्त मे लिखा है समस्त राशि-चक्र प्रवह वायु द्वारा आकृष्ट हो अपनी अपनी कक्षा मे निरन्तर भ्रमण

या प्रसव भूमि है हमारे इढ़ाग दिहातो उससे सर्वथा बचे रहते हैं। म्यूनिसिपालिटी की असह वेदना कैसे सहना होता है कभी उन्होंने जाना ही नहीं।

विष या स्वाद मे पगें हुये ऐयाशी करते-करते पीले आम से ज़र्द; जिनके तन की तन्दुरुस्ती-हरियाली को तरुनी-बार-विलासिनी हरिनी बन चर गईं, ऐसे इन नगर निवासियों को हमारी ग्रामीण मण्डली सुचित्त बैठ अपनी घरेलू बात चीत मे जीट उड़ाते हुये क़हक़हे मार रही थी कि अचानक कोई शहर का रहने वाला कपट नाटक की प्रस्तावना सदृश शहरीयत के बर्ताव से ऊबा हुआ वहाँ पहुँच बोला—"क्यों भइया आप लोगो ने कौन सी ऐसी तपस्या किस पुण्य भूमि में कर रक्खा है जो विषय लम्पट, मदोन्मत्त, नगर के नामी धनियों का मुख तुम्हे नहीं देखना पड़ता। न ज़ाहिरदारी और गर्व मे सने उनके बचन तुम्हें सुनना पड़ता है। न हमारे समान तुम उनकी प्रत्याशा मे दौड़ा करते हो; शान्त चित्त दिन भर मेहनत करने के उपरान्त समय से जो कुछ मिला भोजन कर टाँग फैलाय सुख की नींद सोये न ऊधो के देने न माधो के लेने, तनज़ेब आबरवाँ से तुम्हें कोई सरोकार नहीं। गजीगाढा जो कुछ अपने देश मे निज की मेहनत से तैयार कर सके उसे जब तुम पहनते हो तब विलाइत के नये फेशन के चटकीले कपड़े तुम्हे फीके जँचते हैं। ऐसी ही लीपी पोती झक, साफ और सुथरी, निर्मल स्वच्छ वायु का निर्गम जहाँ कही से प्रतिहत नही है; फूस की छाई तुम्हारी झोपड़ी तुम्हें वह सुख देती हैं जो हवा से बात करते अभ्रंलिह गगनस्पृक् किन्तु शहर की गन्दी मैली दुर्वायु दूषित अमीरों के सतखण्डे महलों मे दुर्लभ हैं। शहर की गन्दी गलियों की दुर्गन्धि तुम्हारे नासारन्ध्र मे काहे को कभी प्रवेश पाया होगा। भाई तुम धन्य हो। अनेक चिन्ता जर्जरित बड़े से बड़े प्रभुवरों और राजा महाराजो को कीमती दस्तरखान और उमदा लज़ीज़ ज़ियाफ़तों मे कदाचित् वह स्वाद न मिलता होगा जो तुम्हें टटके ताज़े घी, खेत के तुर्त के कटे ज्वार बाजरे, जवा और बेरें की ताज़ी रोटी में मिलता है।

२७—ग्राम्य जीवन

मनुष्य के लिये ग्राम्य-जीवन मानो प्रकृति देवी की शुद्ध प्राकृतिक अवस्था का आदर्श स्वरूप है। अर्थात् (नेचर) प्रकृति के साथ आर्ट) बनावट ने जब तक बिलकुल छेडछाड़ नहीं किया उस दशा मे प्रकृति देवी का कैसा स्वरूप रहता है ग्राम्य जीवन मे यह हमारे सामने आइना सा रख दिया गया है। अपने लेखों मे हम इसे कई बार सिद्ध कर चुके हैं कि हमारे प्राचीन आर्य प्रकृति के बड़े भक्त थे; वे प्रकृति के स्वाभाविक रूप को अपनी हिकमत अमली के द्वारा कुरूप या उसे बदलना नहीं चाहते थे। इस आधुनिक पश्चिमी सभ्यता से उनकी पुरानी सभ्यता बिलकुल निराले ढंग की थी। यह हम कभी न मानेंगे कि यूरोप के बड़े नामी विद्वान् दार्शनिक और वैज्ञानिकों की भाँति भाफ और बिजली तथा अनेक रासायनिक परिवर्तन मे क्या-क्या शक्तियाँ हैं; जिन्हें काम मे लाय मिट्टी का पुतला आदमी कहाँ तक तरक्की कर सकता है; जिस तरक्की को साधारण बुद्धि वाले हम लोग दैवी शक्ति या दैवी घटना कहेगे उन पुराने आर्यों को न सूझी हो। किन्तु उन्होंने जान बूझ इसे बरकाया कि ऐसा होने से हमारी माननीय प्रकृति (पॉल्यूटेड) दूषित हो प्रत्यवाय मे जितना उस प्राकृतिक परिवर्तन से लाभ उठाने की सभावना हम रखते हैं उससे दो चन्द हमारी हानि प्रत्यक्ष है।

हमारी मन्द बुद्धि मे कुछ ऐसा ही स्थिर हो गया है कि यह प्लेग, हैज़ा चेचक आदि का भयकर उपद्रव जो प्रति वर्ष किसी न किसी रूप में नदी के प्रवाह के समान फैल देश के देश को उजाड़ डालता है; दूसरे जल वायु की स्वच्छता और शुद्धता सकुचित होती जाती है; यह सब उसी के छेड़ने का परिणाम है। बड़े-बड़े शहरों की घनी बस्ती के दूषित जल वायु का बुरा असर जो भाँत-भाँत के रोग पैदा करने का मानो चश्मा

"वियोगदुःखानुभवानभिज्ञैः काले नृपाशं विहितं ददद्भिः ।
अहार्यशोभारहितैरमायैरैक्षिष्ट पुंभिः प्रचितान्सगोष्ठान् ॥
स्त्री भूषणं चेष्टितमप्रगल्भं चारूण्यवक्राण्यभिवीक्षितानि ।
ऋजूंश्चविश्वासकृतः स्वभावान् गोपाङ्गनानां मुमुदे विलोक्य ॥
विवृत्तपार्श्वं रुचिरांगहारं समुद्वहच्चारुनितम्बबिम्बम् ।
आमन्द्र मन्थध्वनिदत्ततालं गोपाङ्गनानृत्यमनन्दयत्तम् ॥

श्री रामचन्द्र विश्वामित्र के साथ धनुष यज्ञ में जाते समय मार्ग में जो ग्राम देखे हैं उन्हीं के वर्णन मे ये श्लोक हैं। भारवि और माघ ने कहीं-कहीं ग्राम्य शोभा का वर्णन किया है पर भट्टि का यह वर्णन सर्वोत्कृष्ट और बहुत ही प्राकृतिक है।

अगस्त; १९०१

कहा भी है :—

"तरुण्यं सर्शपशाको नवनीत घृतं पिच्छलाणि दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्रामीण जनो मिष्ट मश्नाति" ॥

हरा-हरा सरसों का साग तुर्त का मथा मक्खन, हींग और ज़ीरा मे बघारी हुई भैंस की पनीली दही से जैसा गाँव के रहने वालों को मधुर स्वादिष्ठ भोजन सब भाँत सुगम है वैसा नगर के धनियों को भी बहुत सा खर्च करने पर मयस्सर नहीं है। इससे भैया तुम्हारा जीवन सफल है। संसार का सच्चा सुख तुम्हारे ही बाट मे आ पड़ा है। नई सभ्यता का नाम तक आपने न सुना होगा ? न नई सभ्यता का विपाक प्लेग और हैज़ा के कारण खाना बदोशों की भाँत घर छोड़ दर-दर तुम घूमते फिरे होंगे ? यमराज सहोदर कोट पेट धारी डाक्टरों का मुख भी आप को कभी देखना नहीं पड़ता। मेलीरिया ज्वर जनित पीड़ा निवारणार्थ कुनइन कभी तुम्हें नहीं ढूँढना पड़ता। न हर महीने दवा खाने की बिल आप को अदा करना पड़ता है। टटके स्वच्छ खाद्य वा पेय-पदार्थो का भोग पहले आप लगा लेते हो तब महीनों के उपरान्त नीरस पदार्थ हमे मिलते हैं। हे अग्ररस भोक्ता तुम्हे नमस्कार है। गौराग महा प्रभुओं का कभी साल भर मे भी एक बार तुम्हे मुख नहीं देखना पड़ता। हम नित्य उनका चपेटा घात सहा करते हैं। हे अन्नपूर्णा देवी के अनन्य भक्त, हे शान्ति के सहकारी जन, हे स्वास्थ्य के सहोदर, आप न होते तो महामारी के विकराल अजगर के मुख से हमें कौन छुड़ा लाता। तुम्हारी ग्राम्य युवतियों की स्वाभाविक लज्जा नागरिक ललनाओं के बनावटी परदों मे कहीं ढूढने पर मिले या न मिले। तुम्हारी समग्र सम्पत्ति का सार भूत पदार्थ गोधन अर्थात् गाय, बैल, भैंस, छेरी, भेड़ी इत्यादि है। गोधन संपन्न किसान छोटे-मोटे ज़मीदारों को भी कुछ माल नहीं समझता।

कवि कुल मुकुट भट्टि ने भी लिखा है :—

डालियों के द्वारा होता है। हम अपना भोजन मुख के द्वारा कर शरीर में पोषक द्रव्य पहुँचाते हैं वृक्षों का वही काम जड़ या मूल के द्वारा होता है। इसी से ये पादप हैं क्योंकि पाद अर्थात् नीचे से अपना पोषक द्रव्य जल को खींचते हैं—और ऊपरी भाग से डालियाँ और पत्तियाँ तथा फूलों से जो उनके शरीर मे मल के स्थान में है उसे फेंकते हैं; यह काम वे रात मे विशेष किया करते हैं। बहुत से फूल और पत्तियाँ हैं जिन की सुगन्धि या दुर्गन्धि दिन में इतना स्पष्ट नहीं मालूम होती जितना रात मे। गुलशब्बू के किस्म के फूलों की सुगन्धि रात में अधिक हो जाती है; बुद्धिमानों ने इसी से इसका नाम रजनी गन्धा रख दिया है। डाक्टर लोग रात मे बगीचों मे वृक्ष के नीचे रहना या सोना मना करते हैं। इसलिये कि वृक्ष अपने शरीर के विषैले पदार्थों को फेका करते हैं; घाम, छाह, शीत, उष्ण, जाड़ा, गरमी आदि का सुख दुःख जैसा हम अनुभव करते हैं वैसा ही ये वृक्ष भी।

आदमियों में जैसा शीतल देश के निवासी उष्ण देश में नहीं जी सकते वैसा ही इन वृक्षो मे देखा जाता है। हम लोगों के देह में जैसा रस, लहू, मास मेदा. हड्डी आदि सात धातु हैं वैसा ही इन वृक्षों के भी रस (जूस) गूदा आदि हैं। जैसा हम लोगों को बाल वृद्ध तरुनाई का विकास या जुदे जुदे कारणों से उनमें घाट या बाढ़ होता है वैसा ही इन वृक्षों मे भी। तात्पर्य यह कि हमारी और इन वनस्पतियों की एक एक बात पूरी तरह पर मिलती है। बहुधा वृक्षों मे भी ऐसे हैं कि जिनमें काट-छाँट न की जाय तो बनैले हो जाते हैं वैसा ही जैसा मनुष्य समाज में न रहे और सभ्यता की बातें उसे न सिखाई जायँ तो गवार या बनैला हो जाता है। सीधा या टेढ़ा आदि में जिस उठान से वृक्ष उठता है बड़ा होने पर वह वैसा ही बना रहता है बल्कि उस प्रकार की उठान उसकी और दृढ़ हो जाती है। आदमियों में भी हम ऐसे ही देखते हैं कदाचित् इसी बुनियाद पर यह कहावत चल पड़ी है:—

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"

२८—मनुष्य तथा वनस्पतियों में समानता

मनुष्य तथा वनस्पतियों के शरीर की बनावट मे प्रकृति ने ऐसी प्रकृष्ट चतुराई प्रगट की है जिस पर ध्यान देने से चित्त चकित होता है और इन दोनो में इतना मेल देखने वाले हमारे पुराने आर्य प्रकृति के कैसे बड़े उपासक थे कितना प्राकृतिक बातों को अभ्यसित (स्टडी) किये हुये थे यह बहुधा उनकी लिखावट से प्रगट है। मनु ने लिखा है—

"शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥"

पाप तीन प्रकार के कहे गये हैं कायिक, मानसिक, वाचिक; मनुष्य जो शरीर के द्वारा पाप करता है उसको नरक की विकराल महा दारुण यातना भोगने के उपरान्त उस पाप से छुटकारा पाने को कुछ काल के लिये वृक्ष का शरीर धारण करना पड़ता है। वाचिक पाप किये हुये को नार्किक यातना भोगने के उपरान्त पक्षी या चौपायों का शरीर लेना पड़ता है और मानसिक पाप किये हुये को अन्त्यज अर्थात् डोम चमार आदि के शरीर में जन्म लेना पड़ता है। तात्पर्य यह कि मनु के इस लेख से यही पता लगता है कि मनुष्य का शरीर पेड़ अथवा वनस्पतियों के गढन से बहुत जोड़ खाता है। तब तो कायिक पापों का परिणाम पेड़ को कहा; मानसिक का परिणाम वृक्ष को न कहा चिड़िये और चौपाये कहे गये। वृक्ष के लिये जैसा सड़ घुन जाने पर या भूजे जाने पर फिर नहीं जमते वैसाही आदमी मे भी देखा जाता है कि विषयीजन जो क्षीणवीर्य हैं या गरमी आदि रोगों से भुने हुये होते हैं उनके वीर्य की उत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है। हम लोग जो काम हाँथ के द्वारा करते हैं वृक्षों मे वही हाथ का काम

जाती है वह-यह कि पेड़ों में पैबन्द या कलम लगाई जाती हैं आदमियों मे वह पैबन्द विलाइती मेम साथ लिये इंगलैंड के लौटे हुये नव शिक्षित युवक जन हैं। खयाल रहे कि इस तरह के कलमी पेड़ों के फल बहुत मधुर और मनोहर होते हैं पर उनकी गुठली में उत्पादिका शक्ति न होने से बीज उनका बोने से उगता नहीं। यह भी उस महामहिम सर्वशक्तिमान् की महिमा बारिध की एक तरंग है नहीं तो हमारी समग्र आर्य जाति इस

"मा पिलंगिनी बाप पिलंग, तिनके लड़के रंग बिरंग"

वाली दोगली नसल से दूषित हो कुछ दिनों में निर्मूल हो जाती।

मई; १९०१

बालक लड़काई में जैसा रहता है बड़े होने पर उसकी वह भली या बुरी तबियत भलाई या बुराई में अधिक प्रबल पड़ जाती है। जो बालक लड़काई में क्रोधी, कृपण या नीची तबियत का है बड़े होने पर कितनी उत्तम शिक्षा के होने पर भी क्रोध कृपणता या नीच स्वभाव में वह बढता जाता है और आमरणान्त वैसा ही बना रहता है। जो बालक लड़काई में सीधा, सरल स्वभाव, उदार चित्त, शान्त, सहनशील, है वह बड़ा होने पर चाहो बिलकुल पढाया लिखाया न जाय तौभी सीधाई, औदार्य और तितिक्षा आदि गुणों मे बढता ही जायगा। अधिकतर तो ये गुण ऐगुण माँ बाप के रजवीर्य के अनुसार होते हैं; वैसा ही जैसा जो कड़ये दाने के वृक्ष हैं उनका फल मीठा नहीं हो सकता न मीठे दाने के पेड़ों के कड़ुये फल फल सकते हैं। लड़के का शील-स्वभाव, चाल-चलन और बर्ताव देख हम उसके माँ बाप के शील-स्वभाव, चाल-चलन बर्ताव आदि को जान सकते हैं। ऐसे ही बाप ने जो भलाई या बुराई की है वह उसकी सन्तान पर उतरती है इसी से यह कहावत है "बाढ़े पुत्र पिता के धर्में"। मनु ने भी ऐसा ही कहा है:—

"यदि नात्मनि पुत्रेषु नच पुत्रेषु नप्तृषु।
नत्वेवं चरितो धर्मः कर्तुर्भवति नान्यथा॥"

मनुष्य जो भलाई या बुराई करता है उसको उस बुराई या भलाई का फल यहीं इसी जन्म मे मिल जाता है कदाचित् न मिला तो लड़कों में उसका फल देखा जाता है। लड़कों में किसी कारण न भी भया तो पोते या नातियों मे तो अवश्य बुराई या भलाई का परिणाम होता ही है कभी व्यर्थ जाता ही नहीं। बुद्धिमानों ने इसी से यह सिद्धान्त कर रक्खा है कि बहू जो अपने घर मे आवै वह बहुत ही ऊँचे घराने और सच्चरित्र माँ बाप की हो; क्योंकि आगे की औलाद का सुधार या बिगाड़ इसी पर निर्भर है। यहाँ पर वृक्ष के सम्बन्ध में एक बात रही

आये थे। कुछ ऐसा मालूम होता है कि आदमी का दिमाग़ कबूतर के दरबों सा है जिसमें एक समय केवल थोड़े से कबूतर और उनके अंडे बच्चे रह सकते हैं फिर ज्यों ज्यों इन कबूतरों की सृष्टि बढती जाती है त्यों त्यों दरबे के खाने भी बढ़ते जाते हैं कदाचित् इसी प्रकार की दशा आदमी के दिमाग़ और उसमे भरे हुये विषयों की भी है। आप हमको डारविन साहब का पक्का चेला मत समझ लीजियेगा; हम यह नहीं मानते कि पहले लोग कम सोचते थे तो वे बन्दर थे और लोगों के सोचने के विषय अधिक होकर हमारे मस्तिष्क को अधिक पुष्ट कर डाला इसलिये बन्दर से आदमी हो गये!

अस्तु, इस बात के मानने मे आप को किसी तरह का उज़ुर न होगा कि अब देखते ही देखते इसी नई नई उमदा उमदा चीज़ों की खोज ने हज़ारों नई नई विद्या निकाली हैं। हमारा केवल विज्ञान सम्बन्धी ही विद्या से प्रयोजन नही है किन्तु वे सब शास्त्र और विद्याये जो मनुष्य को घर-गृहस्थी मे उठते बैठते चलते फिरते प्रतिक्षण काम मे आ सकती हैं और न इसी बात के स्वीकार करने मे आपको कुछ एच-पेच होगा कि इन्ही सब नई ईज़ादों का यह फल हुआ कि आदमी की अधिक फुरती या चालाकी पर मानों सान सी रख दी गई है। हजारों नये नये शगल, सैकड़ों नये नये धन्धे लोगों को बझा रखने के ऐसे निकले हैं कि पूर्व कालिक समाज की गढ़न के लिये उनका उपयोगी होना ही असम्भव था। "सर्व साधारण के हित की चीज़ें" इस जुमले को जितना हम लोग अब सुनते हैं और जितना पिष्ट पेषण इस पर होता है उतना पूर्व कालिक लोगों के रहन-सहन के ढंग ही पर ध्यान देने से मालूम होता है कि सर्वथा असम्भव था। इस समय यह "सर्व साधारण" वह प्रबल समूह है जिसने हम लोगों के लिखने के ढंग को, पढ़ने के ढंग को, सोचने की प्रणाली को, पुस्तक और किताबों के विषय को, भीतर-बाहर घर-द्वार के बर्ताव को, आने जाने उठने बैठने रहने-सहने के तरीके को, निज

२६—नई वस्तु की खोज

मनुष्य में नई नई बातों के सुनने की, नये नये दृश्य देखने की, नई नई बात सीखने की सदा लालसा रहती है। इन नई नई वस्तुओं की खोज परिपक्क बुद्धि के हो जाने पर उपजती हो सो नहीं किन्तु लड़कपने ही से जब हम अत्यन्त सुकुमार मति रहते हैं तभी से इसका अंकुर चित्त में जमने लगता है। कोई लड़का कितना ही खेलवाड़ी और आवारा हो या किसी नीचे से नीचा काम में क्यों न लगा हो उसमे भी उसको नये रास्ते की खोज अवश्य होगी।

हमने देखा है जो लोग दिन भर कोई फाइदे का लाभदायक काम नहीं करते बरन् खेल ही कूद मे समय गवाँते हैं उनको भी जिस दिन कोई नया तरीका खेलने या दिल बहलाने का मिल जाता है उस दिन उनकी भी खुशी का हाल न पूछिये। परन्तु विचार कर देखिये तो निरे खेल ही कूद में दिन काटना मनुष्यत्व और मनुष्य शब्द के अर्थ पर आक्षेप करना है। क्योंकि हमारे यहाँ के पूर्व कालिक विद्वानों में आदमी का पर्याय मनुष्य जो रक्खा है वह यही देख कर कि आदमी अपनी भली बुरी दशा सोच सकता है। उसके चारो ओर जो संसार के प्राकृतिक कार्य हो रहे हैं उनका भेद ले रहा है; उनकी असलियत दरयाफ़्त करना चाहता है; नित नई नई विद्या और विज्ञान को वृद्धि करता जाता है। अपनी ज़िन्दगी को मज़ेदार करने की ज़रूरियात पैदा करता जाता; और अपने सोचने की शक्ति के बल उन ज़रूरियात को पूरा कर अपने जीवन को आराम और सुख देने का ढग भी बढ़ाता जाता है। आज जो सैकड़ों तरीके आराम पहुँचाने के हम लोगों को मालूम हैं पहले के लोगों को केवल वे मालूम ही नहीं थे वरन् स्वप्न में भी उनके ध्यान मे कभी नहीं

पर भी नही हो सकती। सिवा इनके बड़े-बड़े अमीरों को नाचना गाना सिखलाने वाले उस्ताद, चाल मे उमदा वर्ताव सिखलाने वाले उस्ताद, मेमों से उमदी तरह सहूलियत के साथ हाथ मिलाना सिखलाने वाले उस्ताद अनगिनती पड़े हैं। आपको शायद ऐसे लोगों के सिखलाने पढ़ाने का मोल भी सुनने की इच्छा होगी, प्रायः तो दो गिनी फी घंटा निर्ख है और बड़ी आसानी से मिलने से इसका दूना चौगुना हो सकता है।

शायद आप कहैं ऐसे लोगों मे मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट गुण अर्थात् उत्तम उत्तम विषयों के सोचने की शक्ति तो बहुत खूबी के साथ नहीं पाई जाती अंगरेज़ी में मनुष्य के लिये जो शब्द "मैन" है क्या उसके माने सोचने वाले के नहीं हैं? इसका उत्तर हम यही दे सकते हैं कि मनुष्य मात्र के लिये सभव नहीं है कि सभी "मनन शील" हों। फिर केवल यही बात नही है कि मनुष्य खेल ही कूद या दूसरी सहूलियत और आराम देने वाली बातों मे नई चीज़ की खोज मे लगा है; किन्तु जो बड़े बड़े गूढ और सूक्ष्म विषय हैं उनके सोचने वाले भी नित्य नये रास्ते निकालते ही जाते हैं। आज आदमी के पैदाइश की "थिओरी" निकली, कल चन्द्र लोक मे किस प्रकार की वस्ती है या हुई नहीं; परसों सूर्य मंडल किस पदार्थ का बना है यह सोचा जाता है; अथवा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था दर असल कोई वस्तु है या दार्शनिकों का खयाली पुलाव है; या बुद्धिमानों ने अटकल पच्चू पदार्थ की एक दशा का नाम रख दिया है; ऐसी ऐसी नित्य एक से एक अचंभे की नई नई बातें सुनने मे बराबर आती जाती हैं। इस लिये यदि कोई यह कह दे कि आज विज्ञान या मनुष्य की कोई विद्या अपने हद्द को पहुँच गई तो यह बड़ी भूल होगी।

हम तो कुछ ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य का जन्म ही नई नई चीज़ों के खोजने के लिये हुआ है; इसी से यह सिद्धान्त बड़ा पक्का मालूम होता है कि "दुनिया रोज़ रोज़ तरक्की पाती जाती है" और जो बातें

के और विदेशीय लोगों के सम्बन्ध को, कहाँ तक गिनावें देश के देश की दशा को कुछ अनोखे नये साँचे में ढाल डाला है। और आशा है कि समाज की पुष्टता के साथ ही साथ इस ढाँचे के रूप रंग और और भी दिन प्रति दिन एच-पेचदार होता जायगा। और सब बातों को अलग रख छापने ही को लीजिये जिसने लोगों के लिखावट का ढंग ही और का और कर डाला। नये नये विषयों की हजारो किताबें और पुस्तकें निकल चुकी हैं फिर भी लोगों को प्रत्येक विषय के नये नये प्रस्ताव पढ़ने की इच्छा शान्त नही होती। शान्त होने की कौन कहे बरन् बढ़ती ही जाती है; क्योंकि यह शिकायत बहुधा लोगों के मुँह से सुनने में आती है कि कोई नई किताब होती तो पढ़ते। हम लोगों ने चोटीले से चोटीला प्रस्ताव लिख लिख दिमाग़ पिच्ची कर डाला फिर भी पाठकों को फड़कते हुये मज़मून का आर्टकिल पढने की इच्छा शान्त न हुई।

अस्तु, हम प्रस्तुत का अनुसरण कर नये नये धन्धों का हाल लिखते हैं। इसे सब लोग मानते हैं कि जो लड़का ताश, शतरंज या चौसर खेला करता है वह समाज मे बड़ा आवारा और निकम्मा समझा जाता है। हमने पेरिस के कुछ लोगों का हाल पढा है कि रोज़ सुबह उठ कर एक तशतरी मे खेल के सब सामान रक्खे हुये (जैसा दो चार गड्डी ताश, शतरज की बिसात और मोहरे आदि) बाजार मे घूमते हैं। बेकार अमीर लोग उन को अपने घर बोलाते हैं; उनके खेल की शरह है जैसा दो घटे का पाँच रुपया. जो लोग उनको बुलाते हैं वे इसी हिसाब से देते हैं; वे लोग अमीरों के खेलने के वक्त हँसी के किस्सों से खेलने वालों का दिल बहलाया करते हैं। आपने नौवाबों के "दस्तर खान के बिल्लों" यानी मुफ़्त खोरों का हाल सुना होगा परन्तु इन पेरिस के मसखरों के टक्कर के लोग शायद हिन्दुस्तान मे न निकलेंगे। जिन्होंने साधारण खेल कूद में आमदनी की एक ऐसी सूरत अपने लिये निकाल लिया है कि जितनी आमदनी इस देश में बड़ी मेहनत के साथ दिमाग पिच्ची करने

३०—कौतुक

जिस बात को देख या सुन चित्त चमत्कृत हो सब ओर से खिंच सहसा उस देखी या सुनी बात की ओर झुक पड़े वह कौतुक है। यह अद्भुत नाम का नौ रसो मे एक रस है। गम्भीराशय बुद्धिमानों को कभी किसी बात का कौतुक होता ही नहीं या उनके लेखे यह सपूर्ण ससार केवल कौतुक रूप है जिसमे मनुष्य का जीवन तो महाकौतुक है :—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाजीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

नित्य-नित्य लोग काल से कवलित् हो प्रतिक्षण यममन्दिर की यात्रा का प्रस्थान रक्खे हुए भी जीने की सभी इच्छा करते हैं इससे बढ़ कर कौतुक और क्या होगा! सच है आधि-व्याधि-जराजीर्ण-कलेवर का क्या ठिकाना? कच्चे धागे के समान दम एकदम मे उखड़ जा सकता है मानो सूत का बंधा हाँथी चल रहा है। तब हमको अपने जीने का जो इतना अभिमान या फक़्र और नाज़ है सो तअज्जुब तो हई है। तत्वविद इस बड़े तमाशे को देख कर भी कुछ क्षुभित नहीं होते और सदा एक से स्थिर-चित रहते हैं तब छोटे-छोटे हादसे उनके लिये कौन बड़ी बात है? अथवा जब कभी ऐसे लोगों का चित्त कौतुक-आविष्ट हुआ तो साधारण लोगो के समान उनका कौतुकी होना व्यर्थ नहीं होता। हम लोग दिन मे सैकड़ों बाते कौतुक की देखा करते हैं पर उससे कभी कोई बड़ा फाइदा नही उठाते। गेलिलियो का एक बार कौतुकी होना बड़े-बड़े साइन्स की बुनियाद डालने वाला आकर्षण-शक्ति (अट्रेक्शन ऑफ ग्रेवीटेशन) के ईजाद का बायस हुआ। ऊपर से नीचे को पदार्थ गिरते ही रहते हैं जिसे देख कभी किसी को कुछ अचरज नहीं होता किन्तु बाग मे बैठे हुये गेलिलियो को सेब का पक्का फल पेड़ से नीचे गिरते देख खटका पैदा हो गई और उसी क्षण से इन के मनमें तर्क-

पहले के लोगों के कभी मन मे न आई थीं उन्हे अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। जब बड़े लोगों का यह हाल है कि दिन रात उम्दा-उम्दा नई-नई चीज़ खोज रहे हैं तो हम आप किस गिनती में हैं; कोई बात जो किसी फ़ायदे की न सोच सके तो दिल-बहलाव के क्रम पर नये ढग का यह लेख ही सही आप के नज़र है।

जून; १६०१

३१—दौड़-धूप

दौड़-धूप का दरजा कहाँ तक बढ़ा हुआ है इसका अन्त पाना सहज नहीं है। सच पूछो तो संसार में हमारा जीवन सब का सब या कुछ हिस्सा इसका केवल दौड़-धूप है और अब इस अँग्रेज़ी राज में तो इस दौड़-धूप का अन्त है। दौड़-धूप अपनी हद्द को पहुँची हुई है। घर में जै प्राणी होंगे सब मिल कर यथोचित दौड़-धूप (स्ट्रगल) करते रहेंगे तभी चलेगा नहीं तो पहिया रुक जायगी। वर्तमान् शासन की प्रणाली ने हमारे नेत्र खोल दिये भारत का अब वह समय दूर गया जब एक आदमी कमाता और दस प्राणियों का पूरा-पूरा भरण पोषण करता रहा। अब उन दस प्राणियों में नौ कमाते हों एक किसी कारण अपाहिज या निकम्मा निकल गया तो उसका कहीं ठिकाना नहीं। दूसरा कारण एक यह भी मालूम होता है कि देश में धन रह न गया और अल्यूरमेंट्स—मन को लुभाने या फुसलाने वाले चित्ताकर्षक पदार्थ इतने अधिक हो गये हैं कि उन्हें देख जी लुभा उठता है। बिना उन्हें खरीदे जी नहीं मानता, न खरीदो तो अपने आराम और आसाइश में फर्क़ पड़ता है। जिस गृहस्थी का पालन-पोषण साथ-आराम के दसरुपया महीने की आमदनी में होता था वहाँ अब हर एक जिन्स के मँहगे हो जाने से पच्चीस रु० महीने की आमदनी पर भी नहीं चलता। इस दौड़-धूप में एक दूसरे के मुकाबिले आगे बढ़ जाने की चेष्टा जिसे अँगरेज़ी में "कंपिटीशन" और हमारी बोलचाल में हिसका या उतरा चढ़ी कहेंगे कोढ़ में खाज के समान है।

इस उतरा-चढ़ी में बहुत से गुण हैं पर कई एक दोष भी इसमें ऐसे प्रबल हैं जिससे हमारी बड़ी हानि हो रही है। एक ही बात के लिये दो प्रतिद्वन्द्वियों के होते आपस में दोनों की उतरा-चढ़ी (कांपि-टीशन) होने पर दोनों जी खोल कोशिश करते हैं जो कृतकार्य होता है उसके हर्ष की सीमा नहीं रहती। हमारे अपढ़ रुपये वाले जिन्हें

वितर्क होने लगा कि क्यों यह फल नीचे गिरा ऊपर को क्यों न चला गया या कोई दूसरी बात इस फल के सम्बन्ध मे क्यो न पैदा हो गई ? बहुत सा ऊहापोह के उपरान्त यही निश्चय उनके मनमे जम गया कि बड़ी चीज़ छोटी चीज़ को सदा अपनी ओर खींचा करती है और यही ऐसी ईश्वरीय-अद्भुत-शक्ति है कि जिसके द्वारा यह उपग्रह तारागण इत्यादि सपूर्ण खगोल अपनी-अपनी कक्षा मे क़ायम हैं। यदि यह शक्ति न होती तो ये बड़े-बड़े ग्रह एक दूसरे से टकरा कर चूर-चूर हो जाते। इसी तरह भाफ की ताकत प्रगट करने वाले जैम्स वाट को आग पर रक्खे हुये डेग के ढकने को खटखटाते हुये देख आश्चर्य हुआ था जिस का फल यह हुआ कि इसको अद्भुत शक्ति जान कर उन्होंने उसे काम मे लाय अनेक तरह की ऐसी-ऐसी इनजिने ईजाद की कि आज दिन उसके द्वारा संसार का कितना उपकार साधन किया जाता है। भाँति-भाँति की कलो के द्वारा जो काम होते हैं रेल और जहाज़ चलाना सब उसी भाफ के गुण प्रगट करने का परिणाम है। ऐसा ही और कितने बड़े-बड़े विद्वान् विज्ञानविद लोगों ने साधारण-सी कौतुक की बातो पर कौतुकी हो बड़े-बड़े काम किये हैं। अस्तु अब हम कौतुक की एक छोटी सी लिस्ट आपको सुनाते हैं उसे भी सुनते चलिये; सरकारी मुहकमों मे पुलिस का मुहकमा कौतुक है। हम लोग भद्दी अक्लि हिन्दुस्तानियों के लिये अँग्रेज़ी राज्य की कतर-ब्योंत कौतुक है। ऐसा ही बुरी तबियत वाले ऐङ्गलोइण्डियन के लिये हमारा कांग्रेस का करना कौतुक है। गवर्नमेंट की कृपापात्र बी उर्दू के मुकाबिले सर्वथा सहाय शून्य हिन्दी का दिन प्रतिदिन बढते जाना भी कौतुक है। हमी लोगों के बीच से पैदा हो हमारे ही छाती का बार उखाड़ने वाली गवर्नमेंट की छोटी बहन हमारी म्युनिसिपालिटी एक कौतुक है, इत्यादि। जहाँ तक सोंचते जाइये एक से एक बढ़ कर कौतुक आपके मनमे जगह करता जायगा।

अक्टूबर; १८८९

३२—बातचीत

इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि अनेक प्रकार की शक्तियाँ जो वरदान की भाँति ईश्वर ने मनुष्यों को दी हैं, उनमें वाक्शक्ति भी एक है। यदि मनुष्य की और-और इन्द्रियाँ अपनी अपनी शक्तियों से अविकल रहतीं और वाक्शक्ति उनमे न होती तो हम नहीं जानते इस गूगी सृष्टि का क्या हाल होता। सब लोग लुज-पुंज से हो मानो एक कोने मे बैठा दिये गये होते और जो कुछ सुख-दुःख का अनुभव हम अपनी दूसरी-दूसरी इन्द्रियों के द्वारा करते उसे अवाक् होने के कारण आपस मे एक दूसरों से कुछ न कह सुन सकते। अब इस वाक्शक्ति के अनेक फायदों मे "स्पीच" वक्तृता और बातचीत दोनों हैं किन्तु स्पीच मे बातचीत का कुछ ढंग ही निराला है। बातचीत मे वक्ता को नाज़ नखरा ज़ाहिर करने का मौका नहीं दिया जाता कि वह एक बड़े अन्दाज़ से गिन गिन कर पाँव रखता हुआ पुलपिट पर जा खड़ा हो और पुण्याहवाचन या नान्दीपाठ की भाँति घड़ियों तक साह्वान मजलिस, चेयरमैन, लेडीज़ ऐंड जेंटिलमेन की बहुत सी स्तुति कर कराय तब किसी तरह वक्तृता का आरभ किया गया जहाँ कोई मर्म या नाक की कोई चुटीली बात वक्ता महाशय के मुख से निकली कि करतल-ध्वनि से कमरा गूँज उठा। इसलिए वक्ता को खामखाह ढूँढ़ कर कोई ऐसा मौका अपनी वक्तृता में लाना ही पड़ता है जिसमे करतल-ध्वनि अवश्य हो। वही हमारी साधारण बातचीत का कुछ ऐसा घरेलू ढग है कि उसमे न करतलिध्वनि का कोई मौका है न लोगो को कहकहे उड़ाने की कोई बात उसमे रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेम पूर्वक संलाप कर रहे हैं कोई चुटीली बात आगई हँस पड़े तो मुसकराहट से होठों का केवल फरक उठना ही इस हँसी की अन्तिम सीमा है।

न इतनी अक़िल न हिम्मत न शऊर की बाहर निकल क़दम बढावे घर के भीतर ही रहा चाहे इस उतरा-चढ़ी में आय आपस मे कट मरते हैं। अफीम, भाँग इत्यादि के ठीकों में ऐसा बहुधा देखा जाता है। इन अहमकों की उतरा-चढ़ी मे प्रजा का धन खूब लुटता है। विदेशी राजा ठहरा, कर्मचारी ऐसी हिकमत काम मे लाते हैं कि उतरा-चढ़ी मे इन महाजनों का टेंडर हर साल बढ़ता ही जाय। ऐसा ही दो धनियों मे आपस की स्पर्द्धा हो गई तो दोनों छार मे मिल जाते हैं। दो विद्यार्थियों मे स्पर्द्धा का होना दोनों के लिये बहुत उपकारी है। एक दूसरे में स्पर्द्धा ही से यह संसार चल रहा है। संसार या संसृति के माने ही दौड़-धूप है और दौड़-धूप की अन्तिम सीमा प्रतिस्पर्द्धा या उतरा-चढ़ी है। कुलीनता का घमण्ड दूसरे प्रतिस्पर्द्धा इन दोनों से हमारा समाज जर्जरित होता जाता है। ब्याह-शादियों मे करतूत का बढ जाना जिससे बहुधा लोग कर्ज़दार हो बिगड़ जाते हैं यह सब इसी उतरा-चढ़ी का प्रतिफल है। उतरा चढी "कंपिटीशन" न हो तो केवल दौड़-धूप (स्ट्रगल) को बुरी न कहेगे।

इधर हिन्दुस्तान का अधःपात आलस्य और सुस्ती ही से हुआ जब तक देश रजा-पुजा था लोग हाथ पर हाथ रक्खे पागुर करते बैठे रहे। विलायती पप के द्वारा जब सब रस खिंच गया तो अब चेत आई भाँति-भाँति की दौड़-धूप में लोग अब इस समय लग रहे हैं पर वह पम्प ऐसा तले तक गड़ गया है कि हमारी दौड़-धूप का भी सारांश उसी पम्प में खिंच जाता है। हाँ इस कदर दौड़-धूप करने से पेट अलबत्ता पाल लेते हैं। इतना परिश्रम न करें तो कदाचित् भूखों मर जाँय। धन्य भारत के वे दिन जब शान्ति-देवी के उपासक हमारे ऋषि मुनि अपने पुण्याश्रम मे आध्यात्मिक चिन्तन मे अपना काल बिताते हुये दौड़-धूप और फिकिर चिन्ता का नाम भी नहीं जानते थे। भारत की परम उन्नति का समय वही था। जुलाई; १९०६

इस बातचीत की सीमा दो से लेकर वहाँ तक रक्खी जा सकती है जितनों की जमात मीटिंग या सभा न समझ ली जाय। एडिसन का मत है असल बातचीत सिर्फ दो मे हो सकती है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जब दो आदमी होते हैं तभी अपना दिल दूसरे के सामने खोलते हैं जब तीन हुये तब वह दो की बात कोसों दूर गई। कहा है—

"षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः"

दूसरे यह कि किसी तीसरे आदमी के आजाते ही या तो दोनों हिजाब मे आय अपनी बातचीत से निरस्त हो बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख और अज्ञानी समझ बनाने लगेंगे। इसी से—

"द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्"

लिखा है। जैसा गरम दूध और ठढे पानी के दो बर्तन पास-पास सांट के रक्खे जाँय तो एक का असर दूसरे में पहुँचता है अर्थात् दूध ठंढा हो जाता है और पानी गरम-वैसा ही दो आदमी पास पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुँच जाता है। चाहे एक दूसरे को देखे भी नहीं तब बोलने की कौन कहे पर एक का दूसरे पर असर होना शुरू हो जाता है एक के शरीर की विद्युत दूसरे मे प्रवेश करने लगती है। जब पास बैठने का इतना असर होता है तब बातचीत में कितना अधिक असर होगा इसे कौन न स्वीकार करेगा। अस्तु, अब इस बात को तीन आदमियों के संगम में देखना चाहिये मानों एक त्रिकोण सा बन जाता है तीनों का चित्त मानों तीन कोण है और तीनों की मनोवृत्ति के प्रसरण की धारा मानो उस त्रिकोण की तीन रेखायें हैं। गुपचुप असर तो उन तीनों मे परस्पर होता ही है जो बातचीत तीनों में की गई वह मानों अंगूठी मे नग सा जड़ जाती है। उपरान्त जब चार आदमी हुये तब बेतकल्लुफी को बिल्कुल स्थान नहीं रहता खुल के बातें न होंगी जो कुछ बातचीत की जायगी वह "फार्मेलिटी"

स्पीच का उद्देश्य अपने सुनने वालों के मन में जोश और उत्साह पैदा कर देना है। घरेलू बातचीत मन रमाने का एक ढंग है इसमे स्पीच की वह सब संजीदगी बेकदर हो धक्के खाती फिरती है।

जहाँ आदमी को अपनी ज़िन्दगी मज़ेदार बनाने के लिये खाने पीने चलने फिरने आदि की ज़रूरत है वहाँ बातचीत की भी हम को अत्यन्त आवश्यकता है। जो कुछ मवाद या धुआँ जमा रहता है वह सब बातचीत के ज़रिये भाफ बन बाहर निकल पड़ता है चित्त हल्का और स्वच्छ हो परम आनन्द मे मग्न हो जाता है। बातचीत का भी एक ख़ास तरह का मज़ा होता है। जिनको बात करने की लत पड़ जाती है वे इसके पीछे खाना पीना तक छोड़ देते हैं अपना बड़ा हर्ज कर देना उन्हें पसन्द आता है पर बातचीत का मज़ा नही खोया चाहते। राबिनसन-क्रूसो का क़िस्सा बहुधा लोगों ने पढा होगा जिसे सोलह वर्ष तक मनुष्य का मुख देखने को भी नहीं मिला। कुत्ता बिल्ली आदि जानवरों के बीच रहा किया; सालह वर्ष के उपरान्त जब उसने फ्राइडे के मुख से एक बात सुनी यद्यपि इसने अपनी जगली बोली मे कहा था उस समय, राबिनसन को ऐसा आनन्द हुआ मानो इसने नये सिरे से फिर से आदमी का चोला पाया। इससे सिद्ध होता है मनुष्य की वाक्शक्ति मे कहाँ तक लुभा लेने की ताकत है। जिनसे केवल पत्र व्यवहार है कभी एक बार भी साक्षात् कार नहीं हुआ उन्हे अपने प्रेमी से कितनी लालसा बात करने की रहती है। अपना आभ्यन्तरिक भाव दूसरे को प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना केवल शब्दों ही के द्वारा हो सकता है। सच है :—

"तामर्द सखुन गुफ्ता बाशद।
ऐबो हुनरश निहफ़्ता बाशद"
"तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते"

बेन जानसन का यह कहना कि—"बोलने से ही मनुष्य के रूप का साक्षात्कार होता है" बहुत ही उचित बोध होता है।

अन्त में खोढ़े दाँत निकाल निकाल लड़ने लगेगी। लड़कों की बातचीत मे खेलाड़ी हुये तो अपनी अपनी आवारगी की तारीफ़ करने के बाद कोई ऐसी सलाह गाठेंगे जिसमें उनको अपनी शैतानी ज़ाहिर करने का पूरा मौक़ा मिले। स्कूल के लड़कों की बातचीत का उद्देश्य अपने उस्ताद की शिकायत या तारीफ या अपने सहपाठियों मे किसी के गुन-ऐगुन का कथोपकथन होता है। पढ़ने में तेज़ हुआ तो कभी अपने मुकाबिले दूसरे को फौकीयत न देगा सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली सी स्कूल भर को अपना गुरू ही मानेगा। अलावे इसके बातचीत की और बहुत सी किसमे हैं राजकाज की बात, व्यौपार सम्बन्धी बात-चीत, दो मित्रों मे प्रेमालाप इत्यादि। हमारे देश मे नीच जाति के लोगों मे बात-कही होती है लड़की लड़के वाले की ओर से। एक एक आदमी बिचवई होकर दोनों के विवाह सम्बन्ध की कुछ बातचीत करते हैं उस दिन से बिरादरी वालों को ज़ाहिर कर दिया जाता है कि अमुक की लड़की से अमुक के लड़के के साथ विवाह पक्का हो गया और यह रसम बड़े उत्साह के साथ की जाती। एक चंडूखाने की बातचीत होती है इत्यादि, इस बात करने के अनेक प्रकार और ढंग हैं।

यूरोप के लोगों मे बात करने का एक हुनर है "आर्ट ऑफ़ कनवरसेशन" यहाँ तक बढा है कि स्पीच और लेख दोनों इसे नहीं पाते। इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला प्रवीण विद्वन्मण्डली में है। ऐसे ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अद्भुत सुख मिलता है सहृदय गोष्ठी इसी का नाम है। सहृदय गोष्ठी के बातचीत की यही तारीफ है कि बात करने वालों की लियाकत अथवा पाण्डित्य का अभिमान या कपट कहीं एक बात में न प्रगट हो वरन् जितने क्रम रसाभास पैदा करने वाले सबों को बरकाते हुये चतुर सयाने अपनी बातचीत का उपक्रम रखते हैं जो हमारे आधुनिक शुष्क पण्डितों की बातचीत में जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं कभी आवे ही गा नहीं। मुर्ग़ और बटेर की लड़ाइयों की झपटा-झपटी के समान जिनकी नीरस काँव काँव

गौरव और संजीदगी के लच्छे मे सनी हुई। चार से अधिक की बातचीत तो केवल राम रमौवल कहलायगी उसे हम सलाप नहीं कह सकते।

इस बातचीत के अनेक भेद हैं। दो बुड्ढों की बातचीत प्रायः ज़माने की शिकायत पर हुआ करती है, बाबा आदम के समय का ऐसा दास्तान शुरू करते हैं जिसमे चार सच तो दस झूँठ। एक बार उनकी बातचीत का घोड़ा छुट जाना चाहिये पहरों बीत जाने पर भी अन्त न होगा। प्रायः अंग्रेज़ी राज्य पर दंश और पुराने समय की बुरी से बुरी रीति नीति का अनुमोदन और इस समय के सब भाँति लायक नौ जवान की निन्दा उनकी बातचीत का मुख्य प्रकरण होगा। अब इसके विपरीत नौ जवानों की बातचीत का कुछ तर्ज़ ही निराला है। जोश-उत्साह, नई उमंग, नया हौंसिला आदि मुख्य प्रकरण उनकी बातचीत का होगा। पढ़े लिखे हुये तो शेकसेपियर, मिल्टन मिल और स्पेन्सर उनके जीभ के आगे नाचा करेंगे अपनी लियाक़त के नशे मे चूरंचूर हमचुनी दीगरे नेस्त। अक्खड़ कुश्तीबाज़ हुये तो अपनी पहलवानी और अक्खड़पन की चर्चा छेड़ेंगे। आशिक़तन हुये तो अपने अपने प्रेमपात्री की प्रशंसा तथा आशिक़तन बनने की हिमाक़त की डींग मारेंगे। दो ज्ञात-यौवना हम उमर सहेलियो की बातचीत का कुछ ज़ायका ही निराला है रस का समुद्र मानो उमड़ा चला आ रहा है इसका पूरा स्वाद उन्हीं से पूछना चाहिये जिन्हे ऐसों की रससनी बाते सुनने को कभी भाग्य लड़ा है।

"प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कान्तः किं" ? नहि नूपुरः।
"वदन्ती जारवृत्तान्तं पत्यौ धूर्ता सखी धिया॥
पतिं बुद्ध्वा सखि ततः प्रबुद्धास्मीत्यपूरयत्"।

अर्द्धजरती बुढ़ियाओं की बातचीत का मुख्य प्रकरण बहू बेटी वाली हुई तो अपनी अपनी बहुओं या बेटों का गिला-शिकवा होगा या बिरादराने का कोई ऐसा राम-रसरा छेड़ बैठेगी कि बात करते करते

नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमे हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुये हैं इस चमनिस्तान की सैर क्या कम दिल-बहलाव है? मित्रों का प्रेमालाप कभी इसकी सोलहवी कला तक भी पहुँच सकता है? इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित्त का एकाग्र करना है जिसका साधन एक दो दिन का काम नहीं वरन् साल दो साल के अभ्यास के उपरान्त यदि हम थोड़ा भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य है। एक वाक्-शक्तिमात्र के दमन से न जानिये कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा जो कतरनी के समान सदा स्वच्छन्द चला करती है उसे यदि हमने दबा कर अपने काबू में कर लिया तो क्रोधादिक बड़े बड़े अजेय शत्रुओं को बिन प्रयास जीत अपने वश कर डाला। इस लिये अवाक् रह अपने आप बातचीत करने का यह साधन यावत् साधन का मूल है, शान्ति का परम पूज्य मन्दिर है, परमार्थ का एक मात्र सोपान है।

अगस्त, १८९१.

मे सरस सलाप का तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है वरन् कपट और एक दूसरे को अपने पाण्डित्य के प्रकाश से बाद मे परास्त करने का सघर्ष आदि रसाभास की सामग्री वहाँ बहुतायत के साथ आप को मिलैगी। घण्टेभर तक कॉव-कॉव करते रहेगे तय कुछ न होगा। बड़ी बड़ी कम्पनी और कारखाने आदि बड़े से बड़े काम इसी तरह पहले दो चार दिली दोस्तों की बातचीत ही से शुरू किये गये उपरान्त बढते बढ़ते यहाँ तक बढे कि हजारों मनुष्यों की उससे जीविका और लाखों की साल में आमदनी उसमें है। पचीस वर्ष के ऊपर वालों की बातचीत अवश्य ही कुछ न कुछ सार गर्भित होगी। अनुभव और दूरन्देशी से खाली न होगी और पच्चीस से नीचे वालों की बातचीत मे यद्यपि अनुभव दूर दर्शिता और गौरव नहीं पाया जाता पर इसमे एक प्रकार का ऐसा दिल बहलाव और ताज़गी रहती है कि जिसकी मिठास उससे दसगुना अधिक चढी बढी है।

यहाँ तक हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा जिसमे दूसरे फरीक़ के होने की बहुत ही आवश्यकता है। बिना किसी दूसरे मनुष्य के हुए जो किसी तरह सम्भव नहीं है और जो दो ही तरह पर हो सकती है या तो कोई हमारे यहाँ कृपा करे या हमी जाकर दूसरे को सर्फराज़ करे। पर यह सब तो दुनियादारी है जिसमे कभी कभी रसाभास होते देर नहीं लगती क्योंकि जो महाशय अपने यहाँ पधारे उनकी पूरी दिलजोई न हो सकी तो शिष्टाचार मे त्रुटि हुई। अगर हमी उनके यहाँ गये तो पहले तो बिना बोलाये जाना ही अनादर का मूल है और जाने पर अपने मन माफिक बर्ताव न किया गया तो मानो एक दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ इस लिये सब से उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम वह शक्ति अपने मे पैदा कर सकै कि अपने आप बात कर लिया करें। हमारी भीतरी मनोवृत्ति जो प्रतिक्षण नये नये रग दिखलाया करती है और जो बाह्य प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कुछ दुर्घट बात

पहुँचाना महा पाप है "पापाय परपीडनम्" तब रणक्षेत्र मे तो न जानिये कितने लोगों को पीड़ा कैसी वरन् उनका वध हो जाता है। आप के घर मे दो चार डाकू या चोर ज़बरदस्ती घुस आवे और दो चार सौ की पूँजी छीन ले जायँ दो चार मनुष्यो को घायल भी कर डाले तो आप को कितना क्रोध होगा और उन डाकुओं को फसाने और दण्ड दिलवाने का आप कितना यत्न करेगे। यदि आप के छोटे से घर के बदले एक बड़ा सा गाँव या देश हो और दो चार सौ की पूँजी की जगह लाखो या करोड़ो की जमा हो; दो चार डाकुओं के बदले सेना की सेना ने आक्रमण किया हो और दो चार घायल मनुष्यो के एवज़ हजारो लाखों की जान गई हो तो यह क्या अच्छा होगा? थोड़े से धन वा थोड़ी सी पृथ्वी के वास्ते लाखो की जान लेना या किसी बात के हठ मे आय लाखो करोड़ो रुपया बरबाद करा देना क्या उचित होगा? जितना रुपया प्रति वर्ष इन लड़ाइयो मे व्यय किया जाता है वह न जानिये कितने आवश्यक कामो के लिये काफ़ी होता। हमारे खेतिहर बेचारे बड़े बड़े कष्ट सह जो रुपया सर्कार को देते हैं वह रुपया बारूद और गोली के छर्रों मे फुकजाना क्या अनुचित नहीं है?

लोग कहते हैं; जैसे जैसे समय बीतता है हम अधिक अधिक सभ्य होते जाते हैं। क्या सभ्यता का यही चिन्ह है कि केवल पृथ्वी और धन के लोभ से सैकड़ो हज़ारो की जान गँवाई जाय? खान्द लोग और फीज़ी टापू के रहने वालों को हम लोग असभ्य और जगली कहते हैं सो इसी लिये कि सुकृत, भलाई, अनुग्रह, दया, क्षमा इत्यादि गुण जो ईश्वर की ओर से मनुष्यो मे दिये गये हैं और जिसके कारण वह सब जीवों मे श्रेष्ठ माना गया है वे सब गुण उन जगली लोगों में नहीं हैं। हम जो उन्हें पापी, दुराचारी, असभ्य कहते हैं सो इसी लिये कि वे मनुष्यो को मार उन्हें खा जाते हैं। परन्तु उनको जो रणक्षेत्र में उदारता, दया और कोमलता को ताक पर रख सैकड़ों हज़ारों वरन् लाखो की जान लै विजय की खुशी मनाते हैं; उन्हें

३३—संग्राम

आज कल जब लोगों का चित्त ट्रान्सवाल युद्ध के बारे मे चुभ रहा है—संग्राम है क्या ? और इसका क्या परिणाम होता है ? यह सब लिखा जाय तो हम समझते हैं असामयिक और अरोचक न होगा। संग्राम बहुत पुराने समय से होता आया है वेदों मे तो अध्याय के अध्याय ऐसे ही पाये जाते हैं जिनमे व्यूह-रचना एक एक अस्त्र-शस्त्र के अभिमन्त्रण और उनको शत्रुओं पर प्रयोग करने के क्रम और तरीके लिखे हुये हैं। और अब इस समय तो यूरोप और अमेरिका मे रोज़ नई नई तरह की बन्दूक और तोपों के ईज़ाद से युद्ध करने का हुनर तरक़्क़ी के ओर-छोर को पहुँचा हुआ है। यद्यपि सब दार्शनिक ज्ञानी विद्वान् इसमें एक मत हो कह रहे हैं कि लड़ाई करना बुरा है तथापि खेद का विषय है कि यह कभी बन्द न हुई बरन् ज्यो ज्यो सभ्यता बढ़ती जाती है डैना माइट, आदि, नये नये तरह की पौडर और लड़ाई की कले निकलती आती हैं। युद्ध के नये नये अस्त्र शस्त्र मे सुघराई होती जाती है और सग्राम मे मृत मनुष्यों की सख्या बढती जाती है।

कुछ लोग कहैंगे सग्राम मे जो शत्रु के सन्मुख तन त्यागते हैं वीर गति पाते हैं और सूर्य मण्डल भेद कर सीधे स्वर्ग को जाते हैं।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यं मण्डलभेदिनौ।
योगेन त्यजते प्राणान् रणे चाभिमुखे हतः॥"

इसलिये कि बहुधा लोग अपने देश या जाति के लिये प्राण देते हैं और फिर युद्ध करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। 'क्षात्र धर्म की थाप रखना अपना परताप। चाहो आगे आवे बाप। तहू चाप खैचना" जब लड़ना क्षात्र-धर्म की थाप अर्थात् प्रतिष्ठा है तो इसमे क्या बुराई है। ऐसों से हमारा यह प्रश्न है कि जब किसी को पीड़ा या दुख

होगी। यदि ऐसा होता कि कभी कभी कुछ मनुष्यों में लड़ाई हो जाती तो हम उसको मनुष्य का एक स्वभाव समझते परन्तु इन दिनों लड़ाई तो एक बड़ा भारी गुण समझा जाता है जिसका यूरोप की सभ्यजाति बड़ा पोषण कर रही है। जहाँ अनेक शिल्प और विज्ञान मे वे लोग एकता हो रहे हैं वहाँ लड़ने भिड़ने के सामान और हुनर मे भी तरक्की के अन्त के छोर तक पहुँच गये हैं। और शिल्प-विज्ञान की तरक्की की तरह इसकी तरक्की भी सभ्यजाति का एक अङ्ग हो रही है। ऐसी समझ रखने वालों को हम मूर्ख नही तो क्या कहें ? आदमी की जान और शरीर कोई कागज़ का पुतला नहीं है जिसके नाश होने या बनने मे कुछ हानि नहीं है।

एक समय एक बड़े प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ ने कहा था "इस बात की कि कितने आदमी लड़ाई में मारे जाते हैं मुझे कुछ भी परवाह नहीं है। मनुष्य को तो एक दिन मरना ही है तब इसके विचार का क्या अवसर है कि वह कब मरा और कैसे मरा था।" मुझे तो कुछ ऐसा जान पड़ता है कि जिस महाशय ने यह कहा था उन्होंने मनुष्य के अनमोल जीवन का कितना मूल्य है कभी नहीं सोचा। कहने को चाहो जो जैसा कह डाले किन्तु उनके चित्त मे तो पूछो जिनके पति जिनके पिता जिनके भाई और जिनके लड़के मारे गये हैं; उन अबोध बालक-बालिकाओं से तो पूछो जो कल आनन्द में मग्न खेल रहे थे आज अनाथ हो खाने तक को तरसने लगे; उस कुलीन अबला से पूछो कल जो पति की सेवा टहल और दर्शन मे जन्म सफल मानती थी आज रँड़ापे का दुःख झेलते अपना जीवन उभारू मान रही है। सारा जगत् उसके वास्ते काँटा हो रहा है। न जानिये कितने नई जवानी के खिलते हुये फूल गोली और छर्रों की चोट से टुकड़े टुकड़े हो गये तलवार और बरछी के आघात से ऐंठ के रह गये। कभी एक मनुष्य को भी अपमृत्यु गाड़ी इत्यादि से दब के मरते देख कितना खेद होता है किन्तु ऐसे रणक्षेत्र को देख

हम वीर कह सराहते हैं और उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं; सर्कार से उन्हे बड़े बड़े तग़मे और खिताब दिये जाते हैं। किसी मनुष्य को जो बात उसके चित मे है और जो वह कहता है उसके अतिरिक्त कुछ कहे तो हम उसे झूठा और मिथ्यावादी कहते हैं पर वही बात यदि कोई राज मन्त्री कहे और उसके द्वारा स्वार्थ साधन कर दूसरों को हानि पहुँचावे तो उसे हम राजनीतिज्ञ कहते हैं। जो काम खान्द जाति के लोग या फीज़ी टापू के रहने वाले करके दुष्ट और पापिष्ट कहे जाते हैं वही यदि जापान या जर्मनी के रहने वाले करे तो वीर हैं। जो झूठ और बनावट अदालत के कसूरवार को ७ वर्ष का कैदी कर देता है वही आक्रमणकारी देशों के सेनापतियों अथवा और और कर्म-चारियों के लिये राजनीतिज्ञता है।

मनुष्य मे जहाँ बहुत सी तामसी या शैतानी प्रकृति है उनमे लड़ना भी एक है किन्तु उसी के,साथ कितने उत्तम गुण भी उसमे हैं। एक समय मनुष्य क्रोध-वश या लालच मे पड़ कोई बुरा काम करता है तो पीछे अवश्य पछताता है और मान लेता है कि हम से बुरा बन पड़ा और उस बात का प्रण करता है कि अब हम से ऐसा काम न बन पड़े। अवश्य यह बात मनुष्य में अच्छी है; यदि उसमे दोष हों और वह जान जाय कि यह हमारे में दोष है तो आगे के लिये यह एक भलाई का चिन्ह है; और यदि उस दोप को वह दोष मानता ही नहीं तो लाचारी है। हमें बड़ा खेद है कि आज कल हमारी सभ्यता मे संग्राम के लिये उत्साह का होना जो बड़ा दोष लग रहा है हम उसे दोष मानते ही नहीं वरन् उस दोष के और अधिक फैलाने के लिये लोगों को प्रोत्साहित करते हैं।

यह बात सत्य है कि किसी किसी समय हमें लड़ाई करने के लिये लाचार हो जाना पड़ता है और उस समय न लड़नाही अधम और बुरा काम है परन्तु दो एक उदाहरण से हम उस तरह की और और बातों को जो अच्छा सिद्ध करें तो ऐसा मान लेना भी हमारी भूल

"शस्त्रविद्या स्वभावेन सर्वाभ्योस्ति महीयसी।
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते ॥"

इन दिनों स्वार्थी, उन्मत्त, अविवेकी, कुटिल राजनीतिज्ञों ने संग्राम को ऐसा घिन के लायक कर दिया कि जिससे सिवाय हानि के लाभ का कहीं लेश भी नहीं है। ईश्वर ऐसों को सुमति दे जिसमें वे अपनी कुटिलाई के एच-पेच काम मे न लाया करें तो संग्राम न हुआ करे लाखों जान कृतान्त के कर-ग्रहण से बची रहे और प्रजा का कल्याण हो।

अप्रैल, १९००

जहाँ लाखों मनुष्यों के शव को कुत्ते कौवे सियार गिद्ध अपने अपने ओर नोच खसोट कलोलें करते हुये पाये जाते हैं चित्त पर कैसा असर होता होगा ! धन्य हैं वे साहसी वीर पुरुष जो प्राण को पत्ते पर रख ऐसे स्थान में भी निर्भय रह वीरता के जोश में भरे हुये पीछे क़दम न धर शत्रु के सन्मुख आगे बढते ही जाते हैं। जो कुछ आदर, गौरव और मान इन वीर पुरुषो का किया जाय वह सब कम है; इनके बराबर का दरजा न तो बड़े से बड़े विद्वान् का है; न बड़े प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का है; न किसी नामी विज्ञानविद कला कोविद् (सायन्टिस्ट या आर्टिस्ट) का है। संसार भर में वधबन्धन आदि अपमृत्यु से मरे हुओं की संख्या अवश्य उससे कितनी कम होगी जितनी अभी हाल मे ट्रान्सवाल युद्ध में मारे गये की है। किन्तु ऐसी लड़ाई देवासुर संग्राम, राम रावण युद्ध या प्युनिकवार से शुरू कर अब तक मे न जानिये कितनी हो चुकी होंगी जिनमे कितने लोगों की जान गई होगी और कितने धन का अपव्यय हुआ होगा। इन्हीं सब बातों को देख भाल विद्वान् ज्ञानी जन के चित्त मे तर्क-वितर्क उठता है कि संग्राम क्यों होता है और इसका क्या परिणाम है ? यदि किसी कुशल राज नीतिज्ञ राज मंत्री से यह प्रश्न पूछा जाय तो वह बहुधा यही उत्तर देगा कि अमुक जाति या देश के लोग हम से डरते नहीं। सरकश हो गये, हमारी इताअत नहीं कुबूल करते; वरन् औरों पर अत्याचार करते हैं उन्हें अपना वशंवद बनाये रखने को इस युद्ध का आरभ किया गया हैं। ऐसे ऐसे कोई बहाने अपनी सफाई रखने का ढूंढ़ लेते हैं। किन्तु वास्तव में जब उनका वैभवोन्माद सीमा को अतिक्रमण कर लेता है धन, प्रभुता और वीरता का अभिमान बढ़ जाता है तभी लड़ना सूझता है ऐसोंही के पक्ष में सग्राम सर्वथा बुरा और अनुचित है। नहीं तो ठीक किसी ने कहा है—शस्त्र की विद्या सब विद्याओं से श्रेष्ठ है, शस्त्र के द्वारा जब राज्य की रक्षा हो सब भाँति स्वस्थ रहता है तब पढ़ना लिखना धर्म-कर्म भोग-विलास सब सूझता है।

रुपया हार गया तो बोला क्या परवाह दूसरे दाँव में इसका दूना जीत लूँगा पर दूसरी बार जुआ में जो कुछ पल्ले का था सो भी निकल गया। ऐसाही एक सोने वाला विद्यार्थी बड़ा होने पर बहुधा अपने मित्रो से कहा करता मै जवानी मे सो कर इतनी देर तक उठता था कि आज हिसाब लगाता हूँ तो ३० वर्ष में २२ हज़ार के लगभग घंटे मैंने बेफाइदे खोये। याद रहे अगर आप रात वाले सोने का वाजिबी बर्ताव करते रहोगे तो धातु वाला सोना आप से आप आ मिलैगा। निश्चय जानिये मनुष्य के लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है यदि चित दै हम उसे लिया चाहें। सोना वह वस्तु है कि इससे रोगियों का रोग, दुखियों का दुःख थके हुओं की थकावट जाती रहती है। वैद्यक वाले लिख भी गये हैं:—

"अर्द्ध रोग हरी निद्रा सर्व रोग हरी क्षुधा"

घोर सन्निपात हो गया, दिन रात तलफ रहा है, एक क्षण भी कल नहीं पड़ती, दस मिनट की एक झाँप आगई रोग आधा हो जाता है जीने की आशा बँध जाती है। अस्तु, यहाँ तक तो हमने मिला के कहा अब अलग अलग लीजिये। रात को बिना सोये बादशाह को भी आराम नहीं पहुँचता सारी दुनिया का सोना चाहो घर मे भरा हो जब तक न सोइये चैन न पाइयेगा। सब दौलत और माल असबाब को ताक पर रख दीजिये और इस आरामदेह फरिश्ते के ज़रूर कैदी बनिये। अगर आपका दिल सैकड़ों झौंझट और फिकरों के बोझ से लदा हुआ है यहाँ तक कि उस बोझ को अलग फेंक घड़ी आध घड़ी कहीं किसी पेड़ की टंडी छाया मे बैठ सीरी बयार का सेवन कर थोड़ा विश्राम करने का भी समय नहीं मिलता; ऐसे अभागे को इस फरिश्ते की हवालात में भी जहाँ जीव मात्र को आराम और स्वास्थ्य मिलता है उसी तरह की बेचैनी और बे करारी रहेगी। तात्पर्य यह कि सच्ची गाढ़ी नींद उन्हीं को आती है जिनके दिलों में कोई गैर मामूली शिकायत नहीं रहती। बहुधा देखने में आता है ऐयाश शराबख़ोर देर से सोते हैं और देर

३४—सोना

मै समझता हूँ सोने के समान दूसरा सुख कदाचित न होगा। भाँति भाँति के व्याधि-ग्रसित मनुष्य-जन्म मे यदि कोई सच्चा सुख ससार मे है तो सोने मे है। किन्तु वह सुख तभी मिलता है जब सोने का ठीक ठीक बर्ताव किया जाय। इस सोने को आप चाहो जिस अर्थ मे लीजिये निद्रा या धन बात वही है फर्क सिर्फ इतनाही है कि रात का सोना मन को मन माना मिल सकता है धातु वाला सोना सब के पास उतनेही अन्दाज़े से नही आता। दूसरे इतने परिश्रम से मिलता है कि दाँतों पसीने आते हैं। हम अपने विचार-शील पढने वालो से पूछते हैं सोने के इन दो अर्थों मे आप किसे अच्छा समझते हैं? क्यों साहब रात वाला सोना तो अच्छा है ना? इस लिए कि यह कगाल या धनी सब को एकसा मयस्सर है। धनी को मखमली कोच पर जो निद्रा आवेगी कगाल को वही ककड़ों पर। कहा भी है—

'निद्रातुराणां नच भूमिशैया''

जिससे सिद्ध होता है कि जो प्रकृति-जन्य पदार्थ हैं उसके मुका़बिले कृत्रिम बनावटी की कोई कदर नहीं है; जैसा मलयाचल की त्रिविध समीरण के आगे खस की टट्टियों से आती हुई थरमेंटीडोट की हवा को कभी आप अच्छा न कहियेगा। किन्तु फिर भी जैसा हम ऊपर कह आए हैं कि सोने के ठीक ठीक बर्ताव ही से सब सुख मिल सकते हैं; इसके ठीक ठीक बर्ताव मे गड़बड़ हुआ कि यही सोना आपका जानों दुश्मन हो जायगा और सकार के स्थान मे आपको रकारदेश तब सूझने लगेगा; पर किफायत और उचित बर्ताव इसका रखिये तो सोना और सुगन्ध वाली कहावत सुगठित होगी। एक सोने वाला जुआरी एक बार बहुत सा

माघ कवि ने शिशुपाल बध के ग्यारहवे सर्ग मे प्रातःकाल का बड़ाही अनूठा वर्णन किया है जिसके पढ़ने वाले को प्रातः परिभ्रमण का पूर्ण अनुभव घर बैठेही प्राप्त हो सकता है।

अब धातु वाले सोने को लीजिये जिस से हमारा प्रयोजन धन से है। ससार के बहुत कम व्योहार ऐसे हैं जिनमे इसका काम न पड़ता हो; क्या फकीर क्या अमीर राजा से रङ्क तक सब इसकी चाह मे दिन रात व्यग्र रहते हैं। कहावत है—

"इक कंचन इक कुचन पर किन न पसारो हाथ"
"सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति"

इस सोने की लालच मे पड़ मनुष्य कभी को वह काम कर गुज़रता है जिस से उस की मनुष्यता मे धब्बा लग जाता है इस कारण सब लोग सोनेही को दोष देते हैं। अर्थात् पाप-कर्म करने वाले को तो सब बचाते हैं और उस पाप के कारण सोने को जो एक जड़ पदार्थ है सम्पूर्ण अधर्म और अन्याय का मूल समझते हैं। सोने के बल आदमी राई को पर्वत और पर्वत को राई कर दिखाता है किन्तु संसार की और सब वस्तुओ के समान यह भी क्षण भंगुर है। बराबर देखते सुनते चले आये हैं कि लक्ष्मी चंचला है और एक पति से सन्तुष्ट नहीं रहती। जिस राह मे इसे डालिये सोना एक बार अपना पूर्ण वैभव प्रकाश कर देगा पर अफसोस नेक राह मे यह बहुत ही कम डाला जाता है। कोई विरले विरक्तों की तो बात ही न्यारी है नहीं तो संसार के असार प्रपंचों मे आसक्त जन इसके लिए कोई ऐसा घिनौने से घिनौना काम नहीं बच रहा जिसे वे न कर गुज़रे हों; कहाँ तक कहें इसके लिए भाई भाई कट मरते हैं, बाप बेटे की जान ले डालता है। तवारीख़ों मे कई एक राजा और बादशाह इसके उदाहरण हैं। किसी अङ्गरेज़ी कवि का कथन है—

For gold his sword the hireling ruffian draws,
For gold the hireling Judge distorts the Laws,

३५—नई बात की चाह लोगों में क्यों होती है ?

पुराना जाता है नया उसकी जगह क्यो आता है इसका ठीक उत्तर चाहे जो हो पर यह कह सकते हैं जैसे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के आगे कोई ऊपर को फेकी हुई वस्तु ऊपर को निरावलम्बन न ठहर के नीचे गिर पड़ती है वैसे ही प्राचीन का जाना और नवीनका आना भी एक नियम हो गया है। प्राचीन के जाने का शोक होता है पर साथ ही उसके स्थान मे नवीन के आने का जो हर्ष होता है वह उस प्राचीन के मिट जाने के विषाद को हटा देता है। इसी सिद्धान्त के अनुकूल मनु महाराज का यह वाक्य है—

"सर्वतोजयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत्पराभवम्"

मनुष्य सब ठौर से अपनी जीत की चाहना रक्खै किन्तु पुत्र से अपनी हारही चाहे इसीलिये कि पुत्र मे नई विच्छित्ति विशेष के आगे हमे कौन पूछेगा। भगवान् विष्णु के छठवें अवतार परशुराम का तेज़ उनके सातवे अवतार श्रीरामचन्द्र के आगे न ठहर सका इसी कारण कि पुराने से नये का गौरव अधिक होता है। रामचन्द्र और अर्जुन प्रभृति वीर योद्धाओं ने बड़े-बड़े युद्धो में जयलाभ किया सही पर ये दोनों भी अन्त मे अपने पुत्र लव और बभ्रुवाहन से युद्ध मे हार गये। इसीके अनुसार अँग्रेज़ी के महा कवि पोप की ये दो लाइन हैं।

We call our fathers fools, so wise we grow,
Our wiser sons will doubtless think us so

हम ऐसे अक्लमन्द हुये कि अपने बाप-दादा आदि पुरुषों को बेवकूफ़ कहते हैं निस्सन्देह हमारे लड़के जो हमसे विशेष बुद्धिमान होंगे निश्चय हमें भी ऐसा ही बेवकूफ़ ख्याल करेंगे। एशिया की सभ्यता

सोना

Wealth heaped on wealth nor truth nor safety buys,
The dangers gather as the treasure rise.

यद्यपि कलह के तीन कारण कहे गये हैं ज़र, ज़मीन, ज़न; पर सच पूछो तो सब बिगाड़ का असिल सबब सिर्फ ज़र है। हमारा हिन्दुस्तान इस सोनेही के कारण छार में मिल गया। हमारे बेफिकर हाकर सोने से हमारे अपरिमित सोने पर इतर देशीय म्लेच्छ गण बाज और चील की तरह आ टूटे, लाखों मनुष्य की जान गई; अन्त को आखीरी बाज़ अङ्गरेज़ अपने मज़बूत पंजे से उस पर जमी तो गये अब रूस इसके लिए मतवाला हो रहा है और ताक लगाये हुए है पर उसका ताक लगाना व्यर्थ है अब तो यहाँ आय सोने की जगह धूर फाकना है।

"सिद्धि रही सो गोरख ले गये, खाक उड़ावें चेले"

अस्तु, इन सब बातो से हमे क्या? सोना निस्सन्देह ससार मे सार पदार्थ है यदि सोने वाला स्वयम् सारग्राही हो और उसे नेकी मे लगावे। इसमे एक यह अद्भुत बात देखने मे आई कि पर्वत के सैकड़ों स्रोत से नदी के झरने की भाँत जब यह आने लगता है तो सैकड़ों द्वार से आता है और जितने काम सब एक साथ आरभ हो जाते हैं। इधर ज़ेवर पर ज़ेवर पिटने लगे, उधर पक्का सगीन मकान छिड़ गया, सवारी-शिकारी अमीरी ठाठ सब ठठने लगे।

"अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संभृतेभ्यस्ततस्ततः।
क्रिया सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः" ॥

जब यह जाने को होता है तो सब चीज़ ऊपर से देखने को यथास्थित बनी रहती है पर गजभुक्त कपित्थ सदृश भीतरही भीतर पोले पड़ टाट उलट मुँह बाय रह जाते हैं।

"समायाति यदा लक्ष्मीर्नारिकेलफलाम्बुवत्।
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्" ॥

सितम्बर, १८९१

६४ कला कहीं नाम को भी न रहीं। यूरोप के नये-नये शिल्प चटकीलेपन और नफ़ासत से समाज के मन को आकर्षित कर रहे हैं। पहिले का अग्निबाण, जृम्भकास्त्र, मोहनास्त्र नाममात्र को पोथियों मे लिखे पाये जाते हैं अब इस समय गिफर्डगन के सामने सब मात हैं। इसी तरह एक धर्म गया दूसरा आया, एक जाति अस्त हुई दूसरे के नवाभ्युत्थान की पारी आई। सारांश यह कि प्राचीन को मिटाय नवीन का प्रचार सृष्टि का यह एक अखण्ड नियम हो गया है। जिस नियम का मूल कारण यही है कि लोगो से नई बात की चाह विशेष रहती है और इसी चाह के बढ़ने का नाम तरक्की और उन्नति है। यूरोप इन दिनों नई ईजादों के छोरको पहुँच रहा है जिसका फल प्रत्यक्ष है कि यूरोप इस समय सभ्यता का शिरोमणि और जगतीतल में सबों का अग्रगण्य है। हमारे हिन्दुस्तानी बाप-दादों के नाम सती हो रहे हैं, परिवर्त्तन के नाम से चिढ़ते हैं, पाप समझते हैं तब कौन आशा है कि ये भी कभी को उभड़ैगे।

बुद्धिमान राजनीतिज्ञों का सिद्धान्त है कि दुनियाँ दिन-दिन तरक्क़ी कर रही है। समुद्र की लहर के समान तरक्की की भी तरल तरंग जुदे-जुदे समय जुदे-जुदे मुल्कों मे आती जाती रहती हैं। इसमें संदेह नहीं बूढ़े भारत मे सबके पहिले तरक्की हुई इसलिये कि देशों के समूह मे हिन्दुस्तान सबसे पुराना है; उन्नति, सभ्यता, समाज-ग्रन्थन का बीज सबके पहिले यहीं बोया गया। मिश्र, यूनान, रोम आदि देश जो प्राचीनता में भारत के समकक्ष हैं सबों ने सभ्यता और उन्नति का अंकुर यहीं से ले ले अपनी-अपनी भूमि में लगाया; उस पौधे को सींच-सींच अति विशाल वृक्ष किया और यह वृक्ष यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी के आधे गोलार्द्ध तक इसकी डालियाँ फैलीं। रोम का राज्य किसी समय क़रीब-क़रीब समग्र यूरोप, अर्द्धभाग के लगभग आफ्रिका और एशिया पर आक्रमण किये था। ग्रीस और रोम की उस पुरानी उन्नति का कहीं अब लेशमात्र भी उन मुल्कों मे बाक़ी नहीं है किन्तु विद्या,

और शक्ति घटी। फ़ारस, मिश्र कैलड़िया आदि पुराने देश किसी गिन्ती मे न रहे। यूरोप का प्रादुर्भाव हुआ, ग्रीस और रोम ने पुराने इतिहासों में स्थान पाया। बाविलन, नैनवे आदि पुराने नगर ढै गये, एथेन्स स्पार्टा और रूम रौनक़ मे बढ़े। कालक्रम अनुसार फ्रांस, जर्मनी और वृटेन इस समय अपने पूर्ण अभ्युदय को पहुँचे हुए हैं। हौले-हौले कुछ दिनों मे इनको भी काल अपना कलेवा बनाय निगल बैठेगा। यूरोप नेस्तनाबूद होगा; अमेरिका उठेगी। समस्त ब्रह्माण्ड का यही नियम है। एक ओर सूर्य्यदेव का उदय होना है दूसरे ओर अस्त होते हैं एक ग्रह डूबता है दूसरे का उदय होता है।

भारतवर्ष मे भी ठीक इसी तरह काल बीत रहा। वैदिक युग आया, पौराणिक युग गया, तंत्रों का प्रचार हुआ। तन्त्रो को भी मिटाय बौद्ध और जैनियों ने ज़ोर पकड़ा। यहाँ के पुराने रहनेवालो को निकाल आर्यों ने अपना राज्य स्थापन किया, आर्यों का पराजय कर मुग़ल और पठानों ने अपना प्रभुत्व स्थापन किया। फिरंगियों ने मुग़ल और पठानों को भी उन्ही आर्यों के समकक्ष कर दिया, जिन्हे जीत मुसल्मान मुसल्लमईमान बने थे और आर्यों को गुलाम और काफिर कहा। वेद की भाषा को हटाय संस्कृत प्रचलित हुई, लोक और वेद के नाम से जिसके दो भेद हुये जिसकी निरख पाणिनि को अपने सूत्रों मे "लोके-वेदेच" कह कर अलग-अलग करना पड़ा। सस्कृत मुर्दा भाषा मान ली गई प्राकृत चली जिसके मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि के नाम से १८ भेद हुये वह भी अठारहों प्रकार की प्राकृति किताबी भाषामात्र रही उसके स्थान मे उर्दू, हिन्दी, बगला, गुजराती, पजाबी आदि के अनेक भेद अब बोले और लिखे जाते हैं और अब तो इन सबों को हटाय अँग्रेज़ी क्रम-क्रम सभ्यता की नाक हो रही है।

न सिर्फ हिन्दुस्तान ही मे इस तरह का अदल बदल हुआ वरन् समस्त सृष्टि की यही दशा है। एक प्रकार की शिल्पविद्या अनादृत होती है दूसरी उसकी जगह आदर पाती है। हमारे यहाँ की पुरानी

शुरूअत में प्रचलित कर देते थे। मुहूर्त के बहुत से ग्रन्थ 'मुहूर्त चिन्तामणि' प्रभृति, धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थ निर्णयसिन्धु आदि और बहुत से आधुनिक पुराण इसी बुनियाद पर बने और प्रचलित किये गये। निपट लठ अब के ब्राह्मणों में इतना शऊर और अक़िल कहाँ कि इतना सोचें कि हमारे धर्म के सिद्धान्त और रीति नीति पुरानी पड़ते पड़ते घिनौनी हो गई हैं, सभ्य समाज के लोगों को सर्वथा अरोचक हो गई हैं। अब इस में कुछ संशोधन और अदल बदल करें जिसमें इसमें नयापन आ जाय और लोगों को पसन्दीदा हो पर एक तो उनको अक़िल नहीं है वरन मूर्ख होते जाते हैं दूसरे स्वार्थ उनका इसमें बिगड़ता है अपनी थोड़ी सी हानि के पीछे पुराने हिन्दू धर्म को बात बात में दक्षिणा पुजाने के कारण अत्यन्त अश्रद्धेय और हँसने के लायक़ किये देते हैं।

कोई कोई जो अक़िल भी रखते हैं और समझते हैं कि ऐसे ऐसे बेहूदे मज़हबी उसूल अब इस रोशनी के ज़माने में देर तक चलने वाले नहीं है वे कुछ तो शरारत और कुछ अपनी सामयिक थोड़ी सी हानि देख उसमें अदल बदल नहीं किया चाहते। स्वामी दयानन्द के देश हितैषिता के सच्चे उसूलों को इसी कारण से न चलने दिया वरन् दयानन्द का नाम लेते चिढ़ते हैं। दूसरे यह कि धर्म के चोखे सिद्धान्त तो तलवार की धार हैं न उसके पात्र सब लोग हो सकते हैं न इस समय की विषय लपट हमारी वर्तमान बिगड़ी समाज को उसमें कोई सुख है।

आधुनिक ब्राह्मणों की यह भी एक चालाकी है कि जैसी रुचिप्रजा की देखा वैसाही गढंत कर डाला और सनातन धर्म की आड़ से उसे चला दिया। हमें इस सनातन धर्म पर भी बड़ी हँसी आती है और कुढ़न होती है कि इस सनातन का कुछ ओर-छोर भी है दुनिया की जितनी बुराई और बेहूदगी हैं सब इस सनातन धर्म में भरी हुई हैं। हमें तो कुछ ऐसा मालूम होता है कि दंभ और मक्कारी की बुनियाद जब तक सनातन धर्म कायम रहेगा और एक भी इसके मानने वाले बचे रहेंगे तब तक हिन्दुस्तान की तरक्क़ी न होगी। क्योंकि जिस बात से

कला, सभ्यता विविध विज्ञान और भिन्न प्रकार के दर्शन शास्त्रों में जो-जो तरक्कियाँ भारत, यूनान तथा रोम ने किया था वह भाषान्तर हो अब तक क़ायम हैं। जो बात एक बार ईजाद एक मुल्क मे होती है उसका उसूल कहीं नही जाता। वृक्ष के समान एक भूमि से उठाय दूसरी मे अलबत्ता लगाया जाता है और उस पृथ्वी मे नया मालूम होने के कारण वहाँ बड़ी चाह से ग्रहण किया जाता है।

जैसा वृक्ष के सम्बन्ध मे है कि कोई कोई वृक्ष किसी-किसी पृथ्वी में वहाँ का जलवायु अपने अनुकूल पाय वहाँ खूब ही फबकता है वैसा ही विद्या, कला, दर्शन आदि भी देश की स्थिति और जल वायु की अनुकूलता के अनुसार वहाँ विस्तार को पाते हैं। अभाग से भारत की स्थिति और यहाँ का जल वायु दर्शन और कविता के अनुकूल हुये यहाँ दर्शन और कविता की जो कुछ उन्नति हुई वह किसी देश मे न की गई। यूरोप की पृथ्वी शिल्प और विज्ञान के अनुकूल हुई वहाँ के साहसी और उद्यमी लोगों ने इन दोनों में जो कुछ तरक्की किया उसे देख हम सब लोग दंग होते हैं और यूरोप निवासियों को दैवी-शक्ति-संपन्न मान रहे हैं। पर यह स्मरण रहे कि जो कुछ उन्नति शिल्प-विज्ञान मे भारत तथा यूनान और रोम ने किया था वह इतनी अल्प थी कि केवल अंकुर या बीज रूप उसे कह सकते हैं अब इस समय शतगुण अधिक पहले से वहाँ देखी जाती है तो यह सिद्ध हुआ कि दुनिया दिन दिन तरक्की कर रही है और इस तरक्की की बुनियाद सदा नई बात की चाह है।

हिन्दू धर्म और रीति-नीति अब इस समय घिन के लायक हो रही है सो इसी लिये कि इसका नयापन बिलकुल खो गया। पुराने समय के ब्राह्मण जिन्होंने यहाँ की रीति-नीति प्रचलित किया यद्यपि स्वार्थी और लालची थे पर इतनी अक़िल उनमें थी कि जब कोई रीति नीति या मज़हब के उसूल बिलकुल पुराने पड़ जाते थे और यह समझते थे कि प्रजा की रुचि इस पर से हटने लगी जल्द उसे अदल बदल कर नई

हम आगे बढ़ सकते हैं और जिसके प्रचलित होने से हमारी कुछ, बेहतरी है वह सब इस सनातन के विरुद्ध है आपस का सह भोजन, पन्द्रह या सोलह वर्ष के उमर की कन्या का विवाह, एक वर्ण के दूसरे वर्ण के साथ योनिक-सम्बन्ध विवाह इत्यादि दूसरे देशों में आना जाना इत्यादि जितनी हमारी भलाई की बातें हैं सबों को सनातन धर्म मना करता है और हमे इस क़दर जकड़े हुये है कि ज़रा भी हिल डोल नहीं सकते तब क्या समझ हम सनातन की खैर मनावें।

अस्तु, इस नये और पुराने के विवरण में अप्रासंगिक भी बहुत सा गाय गये सारांश सब का यही है कि हमारी तरक्क़ी की आशा हमें तभी होगी जब पुरातन और सनातन की ओर से तबियत हट नूतन की क़द्र हमारे चित्त मे स्थान पावेगी और अपनी हर एक बातों में नये नये परिवर्तन का प्रचार कर सभ्य देश और सुसभ्य जाति के समूह में गिनती के लायक हम अपने को बनावेंगे और अपने नवाभ्युत्थान से चिरकाल से जो सभ्यता और उन्नति के शिखर पर चढ़े हुये हैं उन्हें शरमावेंगे। जो एक दिन अवश्य होगा इसमें सन्देह नहीं उसके होने में जितनी देर हो रही है उतना उमदा मौका हाथ से निकला जाता है।

सितम्बर; १८९६

हम आगे बढ़ सकते हैं और जिसके प्रचलित होने से हमारी कुछ. बेहतरी है वह सब इस सनातन के विरुद्ध है आपस का सह भोजन, पन्द्रह या सोलह वर्ष के उमर की कन्या का विवाह, एक वर्ण के दूसरे वर्ण के साथ योनिक-सम्बन्ध विवाह इत्यादि दूसरे देशों में आना जाना इत्यादि जितनी हमारी भलाई की बातें हैं सबों को सनातन धर्म मना करता है और हमे इस क़दर जकड़े हुये है कि ज़रा भी हिल डोल नहीं सकते तब क्या समझ हम सनातन की खैर मनावें।

अस्तु, इस नये और पुराने के विवरण में अप्रासंगिक भी बहुत सा गाय गये सारांश सब का यही है कि हमारी तरक्क़ी की आशा हमें तभी होगी जब पुरातन और सनातन की ओर से तबियत हट नूतन की क़द्र हमारे चित्त मे स्थान पावेगी और अपनी हर एक बातों में नये नये परिवर्तन का प्रचार कर सभ्य देश और सुसभ्य जाति के समूह में गिनती के लायक हम अपने को बनावेंगे और अपने नवाभ्युत्थान से चिरकाल से जो सभ्यता और उन्नति के शिखर पर चढ़े हुये हैं उन्हें शरमावेंगे। जो एक दिन अवश्य होगा इसमें सन्देह नहीं उसके होने में जितनी देर हो रही है उतना उमदा मौका हाथ से निकला जाता है।

सितम्बर; १८९६